अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

सर्वोदय जगत

वर्ष-42, अंक-07, 16-30 नवंबर, 2018

स्वच्छता

'कोई भी म्युनिसिपैलिटी शहर की अस्वच्छता और आबादी की सघनता का सवाल महज टैक्स वसूल करके और सफाई का काम करने वाले नौकरों को रखकर हल करने की आशा नहीं कर सकती। यह जरूरी सुधार तो अमीर और गरीब, सब लोगों के संपूर्ण और स्वेच्छापूर्ण सहयोग द्वारा ही शक्य है।... मुझे म्युनिसिपैलिटी की प्रवृत्तियों में बहुत दिलचस्पी है। म्युनिसिपैलिटी का सदस्य होना सचमुच बड़ा सौभाग्य है। ... उन्हें अपने को शहर की सफाई का काम करने वाले भंगी कहने में गौरव का अनुभव करना चाहिए।'

- महात्मा गांधी

सर्व सेवा संघ
(अखिल भारत सर्वोदय मंडल)
द्वारा प्रकाशित

अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुखपत्र
सर्वोदय जगत
सत्य, अहिंसा एवं सर्वोदय-सम्पूर्ण क्रांति का संदेश वाहक

वर्ष : 42, अंक : 07, 16-30 नवंबर, 2018

संपादक
अशोक मोती
फोन : 0542-2440223

संपादक मंडल
डॉ. रामजी सिंह भवानी शंकर 'कुसुम'

संपादकीय कार्यालय
सर्व सेवा संघ, साधना केन्द्र
राजघाट, वाराणसी-221001 (उ.प्र.)
फोन : 0542-2440-385/223
ईमेल : sarvodayajagat@gmail.com
Website : sssprakashan.com

शुल्क

मूल्य	:	05 रुपये
वार्षिक	:	100 रुपये
आजीवन	:	1000 रुपये

खाता संख्या : 383502010004310
IFSC No. UBIN-0538353
Union Bank of India
Rajghat, Varanasi

इस अंक में...

1. स्वच्छता और गांधी... 2
2. आजाद भारत का लक्ष्य... 3
3. शासनतंत्र और उत्पत्ति... 5
4. सफाई की देश-व्यापी मुहिम... 7
5. सत्य के प्रयोग : सच पूरा पर कथा... 10
6. लागू हो स्वच्छ वायु कार्यक्रम... 12
7. अमीर देशों के भोग और विलास का... 13
8. बदलते समय का संकेत 'मीटू'... 16
9. उपन्यास - 'बा'... 17
10. गतिविधियां एवं समाचार... 19
11. ग़ज़लें... 20

संपादकीय

स्वच्छता और गांधी

स्वच्छता शरीर और दिमाग से अधिक हृदय की जरूरत है, क्योंकि स्वच्छता हमारी नैतिकता, हमारे आचरण तथा हमारी छवि से जुड़ी है। स्वच्छता व्यक्ति के स्वास्थ्य तथा उसकी पवित्रता से जुड़ी हुई है और अध्यात्म का आरोहण भी है।

हमारे आचरण का दूसरों पर असर तब तक नहीं होता, जब तक हम कोई काम पूरी निष्ठा व श्रद्धा से नहीं करते या वह आचरण हमारे जीवन में रच-बस न गया हो। इसलिए स्वच्छता महज गंदगी के निस्तार में वैज्ञानिक तकनीक (पश्चिम देशों के कॉरपोरेटी स्वच्छता विज्ञान) का इस्तेमाल करना ही नहीं है, अपितु यह एक बहुमुखी विधायी कार्य है। स्वच्छता के प्रति सोच व आचरण बदलना सबसे महत्त्वपूर्ण है, जिससे कि स्वच्छता हमारी आदत बन जाय।

गांधी के जीवन की एक घटना का उल्लेख करना यहां प्रासंगिक होगा, जिससे हम कई सीख ले सकते हैं। गांधी के पास एक सज्जन अपने बेटे को लेकर आये, उसे गुड़ खाने की आदत लग गयी थी, यदि गांधीजी उसे मना कर दें, बच्चा गुड़ खाना बंद कर देगा। गांधी ने उस समय बच्चे को कुछ भी कहने से साफ मना कर दिया। उस सज्जन को यह कहकर लौटा दिया कि कुछ दिन बाद बच्चे को लेकर आयें। गांधी बच्चे को गुड़ खाने से मना नहीं कर सकते थे क्योंकि वे खुद गुड़ खाते थे। गांधी के हृदय में न तो ऐसा आत्मविश्वास था और न ही नैतिक शक्ति कि वे बच्चे को गुड़ खाने से मना कर दें। दरअसल हम कोई ऐसे आचरण करने से दूसरों को मना नहीं कर सकते, जैसा आचरण हम खुद करते हों। कुछ दिनों में गांधी ने खुद गुड़ खाने की आदत त्याग दी, फिर बच्चे को अधिक गुड़ खाने से मना किया। यानी सत्य को जब हम जानते हैं तो वह सत्य हमें मुक्त करता है।

सत्य यह है कि स्वच्छता और पवित्रता में ईश्वर का वास है, इसीलिए तीर्थ-स्थलों यथा—मंदिर-मस्जिद, चर्च या गुरुद्वारे को हम पवित्र स्थल कहते हैं, जहां हम इबादत कर सकते हैं। अक्सर हम एक कहावत को दुहराते हैं—''मन चंगा तो कठौती में गंगा'', तो इसे हम अपनी आंतरिक पवित्रता से जोड़कर देखते हैं। हम न केवल अपने वातावरण, दिमाग बल्कि हृदय को भी स्वच्छ रखने की कोशिश करते हैं। जब तक मन पवित्र न हो और पवित्रता हमारे आचरण में न हो, हम पूरे समाज को स्वच्छ नहीं बना सकते। अपने स्वच्छ आचरण से ही दूसरों के आचरण व सोच में परिवर्तन कर सकते हैं। कोई इवेंट आयोजित कर हम स्वच्छता लोगों के जीवन में डाल नहीं सकते। स्वच्छता आचरण तब बनेगी, जब वह मनुष्य के जीवन में चलने वाली प्रक्रिया सामूहिक चेतना का रूप ले ले।

गांधी स्वच्छता को सामूहिक चेतना बनाने का काम जीवन भर करते रहे। दक्षिण अफ्रीका में स्वयं भंगी बने, अपनी पत्नी 'बा' और उनके साथ काम करने वाले हर नर-नारी को भंगी बनने को प्रेरित किया। फीनिक्स आश्रम ही नहीं, सेवाग्राम जैसे गांधी आश्रमों को एक मॉडल के रूप में दुनिया के सामने प्रस्तुत किया। इस आचरण को गांधी भारत के सुदूर गांव तक ले जाने की कोशिश की। यही था गांधी के रचनात्मक अहिंसा का सतत् कार्यक्रम।

दक्षिण अफ्रीका से लौटने पर बनारस के बीएचयू में गांधी ने काशी विश्वनाथ के मंदिर के चारों ओर फैली गंदगी पर गहरी चिन्ता व्यक्त की। गांधी जब नील का दाग धोने चंपारण पहुंचे तो सत्याग्रह के साथ स्वच्छता को आगे बढ़ाने का काम किया। नोआखली (अब बंग्लादेश) में गांधी को हमने राह पर चलते पगडंडियों से मैले खुद उठाते देखा। मनु गांधी पदयात्रा में गांधी के पीछे चल रही थीं। मनु के टोकने पर—'मैं ही यह कर लेती', गांधी ने मुस्कुराते हुए कहा—'देखो आज मैं उठा रहा हूं', यह देखकर कल से कोई पगडंडियों को गंदा नहीं करेगा और कोई गंदा करेगा, तो उसे उठाने वाले बहुत लोग होंगे। जो खुद अपने मैले दूसरे से उठवाते हों, सफाई दूसरे से करवाते हों, वे लोगों के आचरण को नहीं बदल सकते। प्रशासन में काम करने वाले नाक में पट्टी लगाकर जनता के सामने झाड़ू लगा लें, उसे जनता एक नाटक के सिवाय कुछ नहीं समझेगी। गंगा की सफाई की हम बात करें लेकिन गंगा में कचड़े, गंदी नालियां बहाते रहें तो गंगा की सफाई कभी हो ही नहीं सकती। इसका सीधा अर्थ है कि हमें न तो गंगा में श्रद्धा है और न ही स्वच्छता और पवित्रता में।

स्वच्छता अभियान की नींव तो गांधी ने डाली थी, लेकिन वह चेतना कहीं ठिठक गयी। सच कहें तो पूरा देश एक कूड़ादान से अधिक कुछ नहीं है। बस अड्डे, रेलवे, कार्यालय और तीर्थ-स्थलों में हमें ऐसी स्वच्छता नहीं दिखती जैसी दिखनी चाहिए। स्पष्टतः स्वच्छता अभियान में गांधी का सिर्फ नाम है, हृदय नहीं। स्वच्छता राजनीति है, अध्यात्म नहीं है। गांधी के लिए सफाई हो या कताई दोनों आध्यात्मिक स्रोत एवं बुनियाद थी। गांधी के चश्मे से हम बहुत गहराई तक नहीं देख सकते, उसे देखने के लिए गांधी के हृदय से अपने जीवन में देखना होगा। क्या देश में एक भी सांस्कृतिक, सामाजिक और राजनैतिक संगठन के कार्यकर्ता (गांधीजन को छोड़) हैं, जिन्हें भंगी का प्रशिक्षण दिया गया हो? इसीलिए राष्ट्रीय स्वच्छता कार्यक्रम में दिशाहीनता है।

स्वच्छता बिना सामूहिक चेतना के फलीभूत हो ही नहीं सकती। जब तक इसे एक-एक व्यक्ति के आचरण और सोच बदलने का कार्यक्रम नहीं बनाया जाता है, गांधी के स्वच्छ भारत की कल्पना हमसे कोसों दूर रहेगी। **–अशोक मोती**

आजाद भारत का लक्ष्य

❑ गांधी

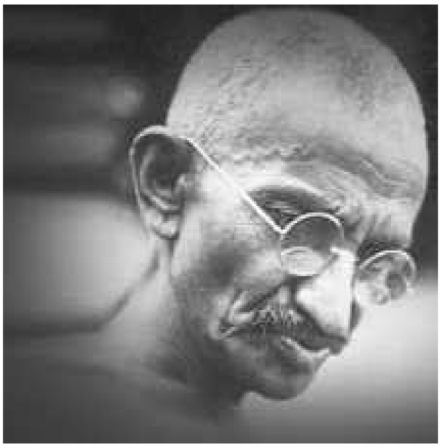

मैं आजादी इसलिए नहीं चाहता कि मेरा बड़ा देश, जिसकी आबादी संपूर्ण मानव-जाति का पांचवां हिस्सा है, दुनिया की किसी भी दूसरी जाति का, या किसी भी व्यक्ति का शोषण करे। मैं अपनी शक्तिभर अपने देश को ऐसा अनर्थ नहीं करने दूंगा। यदि मैं अपने देश के लिए आजादी चाहता हूं, तो मुझे यह मानना चाहिए कि प्रत्येक दूसरी सबल या निर्बल जाति को भी उस आजादी का वैसा ही अधिकार है। यदि मैं ऐसा नहीं मानता हूं और ऐसी इच्छा नहीं करता हूं, तो उसका यह अर्थ है कि मैं उस आजादी का पात्र नहीं हूं।

मेरी आकांक्षा का लक्ष्य स्वतंत्रता से ज्यादा ऊंचा है। भारत की मुक्ति द्वारा मैं पश्चिम के भीषण शोषण से दुनिया के कई निर्बल देशों का उद्धार करना चाहता हूं। भारत के अपनी सच्ची स्थिति को प्राप्त करने का अनिवार्य परिणाम यह होगा कि हरएक देश वैसा ही कर सकेगा और करेगा।

मेरा दृढ़ विश्वास है कि यदि भारत अपनी स्वतंत्रता अहिंसक उपायों से प्राप्त करे, तो फिर वह बड़ी स्थलसेना, उतनी ही बड़ी जलसेना और उससे भी बड़ी वायुसेना रखने की इच्छा नहीं करेगा। यदि आजादी की अपनी लड़ाई में अहिंसक विजय प्राप्त करने के लिए उसकी आत्मचेतना को जितनी ऊंचाई तक उठना चाहिए, उतनी ऊंचाई तक वह उठ सकी, तो दुनिया के माने हुए मूल्यों में परिवर्तन हो जायेगा और लड़ाइयों के साज-समान का अधिकांश निरर्थक सिद्ध हो जायेगा। ऐसा भारत भले महज एक सपना हो, बच्चों की जैसी कल्पना हो लेकिन मेरी राय में अहिंसा द्वारा भारत के स्वतंत्र होने का फलितार्थ तो बेशक यही होना चाहिए।...तब उसकी आवाज दुनिया के सारे हिंसक दलों को नियंत्रण में रखने की कोशिश करने वाले एक शक्तिशाली देश की आवाज होगी।

क्या जगत् को रास्ता दिखाने का श्रेय भारत को मिलेगा? : मैं अपने हृदय की गहराई में यह महसूस करता हूं कि दुनिया रक्तपात से बिलकुल ऊब गयी है। दुनिया इस असह्य स्थिति से बाहर निकलने का रास्ता खोज रही है। और मैं विश्वास करता हूं तथा उस विश्वास में सुख और गर्व अनुभव करता हूं कि शायद मुक्ति के प्यासे जगत् को यह रास्ता दिखाने का श्रेय भारत की प्राचीन भूमि को ही मिलेगा।

हिन्दुस्तान की राष्ट्रीय सरकार क्या नीति अख्तियार करेगी, सो मैं नहीं कह सकता। संभव है कि अपनी प्रबल इच्छा के रहते हुए भी मैं तब तक जीवित न रहूं। लेकिन अगर उस वक्त तक मैं जिन्दा रहा, तो अपनी अहिंसक नीति को यथासंभव संपूर्णता के साथ अमल में लाने की सलाह दूंगा। विश्व की शांति और नयी विश्व-व्यवस्था की स्थापना में यही हिन्दुस्तान का सबसे बड़ा हिस्सा भी होगा। मुझे आशा तो यह है कि चूंकि हिन्दुस्तान में इतनी लड़ाकू जातियां हैं और चूंकि स्वतंत्र हिन्दुस्तान की सरकार के निर्णय में उन सबका हिस्सा होगा, इसलिए हमारी राष्ट्रीय नीति का झुकाव मौजूदा सैन्यवाद से भिन्न किसी अन्य प्रकार के सैन्यवाद की तरफ होगा। मैं यह उम्मीद तो जरूर करूंगा कि एक राजनीतिक शस्त्र की हैसियत से अहिंसा की व्यावहारिक उपयोगिता का हमारा पिछला सारा...प्रयोग बिलकुल विफल नहीं जायेगा। और सच्चे अहिंसावादियों का एक मजबूत दल हिन्दुस्तान में पैदा हो जायेगा।

जब भारत स्वावलंबी और स्वाश्रयी बन जायेगा और इस तरह न तो खुद किसी की संपत्ति का लोभ करेगा और न अपनी संपत्ति का शोषण होने देगा, तब वह पश्चिम या पूर्व के किसी भी देश के लिए—उसकी शक्ति कितनी भी प्रबल क्यों न हो—लालच का विषय नहीं रह जायेगा। और तब वह खर्चीले शास्त्रास्त्रों का बोझ उठाये बिना ही अपने को सुरक्षित अनुभव करेगा। उसकी यह भीतरी स्वाश्रयी अर्थ-व्यवस्था बाहरी आक्रमण के खिलाफ सुदृढ़तम ढाल होगी।

दुनिया के सुविचारशील लोग आज ऐसे पूर्ण स्वतंत्रत राज्यों को नहीं चाहते जो एक-दूसरे से लड़ते हों, बल्कि एक-दूसरे के प्रति मित्रभाव रखने वाले अन्योन्याश्रित राज्यों के संघ को चाहते हैं। भले ही इस उद्देश्य की सिद्धि का दिन बहुत दूर हो। मैं अपने देश के लिए कोई भारी दावा नहीं करना चाहता। लेकिन यदि हम पूर्ण स्वतंत्रता के बजाय अन्योन्याश्रित राज्यों के विश्वसंघ की तैयारी जाहिर करें, तो इसमें हम न तो कोई बहुत भारी बात ही कहते हैं और न वह असंभव ही है।

देश-प्रेम और मानव-प्रेम में भेद नहीं है : मेरे लिए देश-प्रेम और मानव-प्रेम में कोई भेद नहीं है, दोनों एक ही है। मैं देश-प्रेमी हूं, क्योंकि मैं मानव-प्रेमी हूं। मेरा देश-प्रेम वर्जनशील नहीं है। मैं भारत के हित

की सेवा के लिए इंग्लैंड या जर्मनी का नुकसान नहीं करूंगा। जीवन की मेरी योजना में साम्राज्यवाद के लिए कोई स्थान नहीं है। देश-प्रेमी की जीवन-नीति किसी कुल या कबिले के अधिपति की जीवन-नीति से भिन्न नहीं है। और यदि कोई देश-प्रेमी उतना ही उग्र मानव-प्रेमी नहीं है, तो कहना चाहिए कि उसके देश-प्रेम में उतनी न्यूनता है। वैयक्तिक आचरण और राजनीतिक आचरण में कोई विरोध नहीं है, सदाचार का नियम दोनों को लागू होता है।

जिस तरह देश-प्रेम का धर्म हमें आज यह सिखाता है कि व्यक्ति को परिवार के लिए, परिवार को ग्राम के लिए, ग्राम को जनपद के लिए और जनपद को प्रदेश के लिए मरना सीखना चाहिए, इसी तरह किसी देश को स्वतंत्र इसलिए होना चाहिए कि वह आवश्यकता होने पर संसार के कल्याण के लिए अपना बलिदान दे सके। इसलिए राष्ट्रवाद की मेरी कल्पना यह है कि मेरा देश इसलिए स्वाधीन हो कि प्रयोजन उपस्थित होने पर सारा ही देश मानव-जाति की प्राण-रक्षा के लिए स्वेच्छापूर्वक मृत्यु का आलिंगन करे। उसमें जातिद्वेष के लिए कोई स्थान नहीं है। मेरी कामना है कि हमारा राष्ट्र-प्रेम ऐसा ही हो।

मैं भारत का उत्थान इसलिए चाहता हूं कि सारी दुनिया उससे लाभ उठा सके। मैं यह नहीं चाहता कि भारत का उत्थान दूसरे देशों के नाश की नींव पर हो।

मेरा देश-प्रेम कोई बहिष्कारशील वस्तु नहीं, बल्कि अतिशय व्यापक वस्तु है और मैं उस देश-प्रेम को वर्ज्य मानता हूं जो दूसरे राष्ट्र को तकलीफ देकर या उनका शोषण करके अपने देश को उठाना चाहता है। देश-प्रेम की मेरी कल्पना यह है कि वह हमेशा, बिना किसी अपवाद के हरएक स्थिति में, मानव-जाति के विशालतम हित के साथ सुसंगत होना चाहिए। यदि ऐसा न हो तो देश-प्रेम की कोई कीमत नहीं। इतना ही नहीं, मेरे धर्म और उस धर्म से ही प्रसूत मेरे देश-प्रेम के दायरे में प्राणीमात्र का समावेश होता है। मैं न केवल मनुष्य नाम से पहचाने जाने वाले प्राणियों के साथ भ्रातृत्व और एकात्मता सिद्ध करना चाहता हूं, बल्कि समस्त प्राणियों के साथ—रेंगने वाले सांप आदि जैसे प्राणियों के साथ भी—उसी एकात्मता अनुभव करना चाहता हूं। कारण, हम सब उसी का स्रष्टा की सन्तति होने का दावा करते हैं और इसलिए सब प्राणी, उनका रूप कुछ भी हो, मूल में एक ही है।

प्रेम और सत्य का पैगाम : सार्वजनिक जीवन के लगभग 50 वर्ष के अनुभव के बाद आज मैं यह कह सकता हूं कि अपने देश की सेवा दुनिया की सेवा से असंगत नहीं है—इस सिद्धांत में मेरा विश्वास बढ़ा ही है। यह एक उत्तम सिद्धांत है। इस सिद्धांत को स्वीकार करके ही दुनिया की मौजूदा कठिनाइयां आसान की जा सकती हैं और विभिन्न राष्ट्रों में जो पारस्परिक द्वेषभाव नजर आता है। उसे रोका जा सकता है।

अगर हिन्दुस्तान अपने फर्ज को भूलता है तो एशिया मर जायेगा। यह ठीक ही कहा गया है कि हिन्दुस्तान कई मिली-जुली सभ्यताओं या तहजीबों का घर है, जहां वे सब साथ-साथ पनपी हैं। हम सब ऐसे काम करें कि हिन्दुस्तान एशिया की या दुनिया के किसी भी हिस्से की कुचली और चूसी हुई जातियों की आशा बना रहे।

अगर आप पश्चिम को कोई पैगाम देना चाहते हैं, तो वह प्रेम और सत्य का पैगाम होना चाहिए।...जमहूरियत के इस जमाने में गरीब की जागृति के इस युग में, आज ज्यादा-से-ज्यादा जोर देकर इस पैगाम की जागृति का दुनिया में प्रचार कर सकते हैं। चूंकि आपका शोषण किया गया है, इसलिए उसका उसी तरह बदला चुकाकर नहीं, बल्कि सच्ची समझदारी के जरिये आप पश्चिम पर पूरी तरह से विजय पा सकते हैं। अगर हम सिर्फ अपने दिमागों से नहीं, बल्कि दिलों से भी इस पैगाम के मर्म को, जिसे एशिया के विद्वान् हमारे लिए छोड़ गये हैं, एक साथ समझने की कोशिश करें और अगर हम सचमुच उस महान् पैगाम के लायक बन जायं, तो मुझे विश्वास है कि हम पश्चिम को पूरी तरह से जीत लेंगे। हमारी इस जीत को पश्चिम खुद भी प्यार करेगा।

पश्चिम आज सच्चे ज्ञान के लिए तरस रहा है। अणु-बमों की दिन-दूनी बढ़ती से वह नाउम्मीद हो रहा है। क्योंकि अणु-बमों के बढ़ने से सिर्फ पश्चिम का ही नहीं, बल्कि पूरी दुनिया का नाश हो जायेगा, मानो बाइबल की भविष्य-वाणी सच होने जा रही है और पूरी कयामत होने वाली है। अब यह आपके ऊपर है कि आप दुनिया की नीचता और पापों की तरफ उसका ध्यान खीचें और उसे बचायें। ❑

'सर्वोदय जगत' के सुधी पाठकों की सुविधा को ध्यान में रखते हुए पत्रिका का हर अंक सर्व सेवा संघ-प्रकाशन की वेबसाइट sssprakashan.com पर उपलब्ध है। इस सुविधा का लाभ पाठकगण उठा सकते हैं। –सं.

21 नवंबर : धीरेन्द्र मजूमदार पुण्य-तिथि

शासन तंत्र और उत्पत्ति यंत्र दोनों पर प्रजा की सत्ता कायम हो

❑ धीरेन्द्र मजूमदार

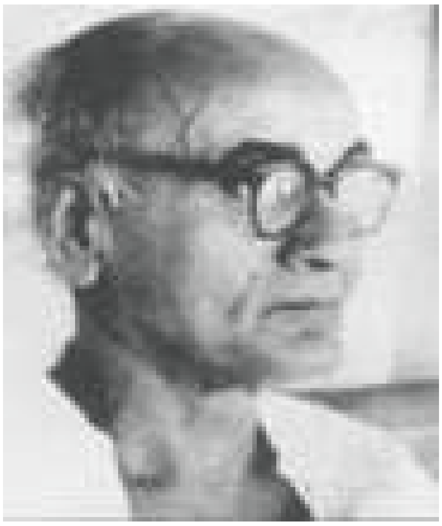

दासप्रथा का अंत और मजदूर-प्रथा का प्रारम्भ : यह सही है कि सामंतवादी समाज में श्रमिक गुलाम था। उसे किसी किस्म की स्वतंत्रता न थी। वह मालिक के कहने पर उठता और बैठता था। पूंजीवादी समाज में पूंजीपति ने स्वतंत्रता के लंबे-लंबे नारे लगाकर दासप्रथा को मिटा दिया तथा श्रमिक को स्वतंत्र कर दिया। लेकिन अगर गौर से देखा जाय तो मालूम होगा कि स्वतंत्रता के उपासकों ने दासप्रथा को तभी हटाया जब उन्होंने हिसाब लगाकर देखा कि उसे हटाना अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए आवश्यक है। क्योंकि उन्होंने देखा कि वाष्प-संचालित यंत्र द्वारा उत्पादन के लिए पहले जैसी अधिक श्रमिकों की आवश्यकता नहीं रह गयी। अतः गुलामों को सपरिवार खिलाकर पालने में कोई लाभ नहीं।

इन्होंने यह समझ लिया कि अगर वे गुलामों को आजाद कर दें तो अल्पसंख्यक श्रमिकों को जब जरूरत पड़े बुलाकर काम देने में परता सस्ता पड़ेगा। इसलिए उन्होंने दासप्रथा तभी हटाई जब दास-श्रमिक की अपेक्षा आजाद मजदूर से काम लेने में उन्हें अधिक लाभ होने लगा। नतीजा यह हुआ कि बेकार श्रमिक और उसके परिवार खाने बिना मरने लगे।

यंत्रोद्योग के कारण समाज में बेकार मजदूरों की संख्या अत्यधिक हो गयी। इससे पूंजीपतियों के लिए उनपर अत्याचार करके लाभ कमाना आसान हो गया। क्योंकि अगर कोई भी श्रमिक अत्याचार सहने से इनकार करता हो तो उसके बदले में असंख्य बेकार और भूखे लोग किसी भी शर्त पर काम करने को तैयार हो जाते थे।

स्वावलंबी उत्पत्ति प्रथा का नाश : केवल श्रमिक वर्ग ही नहीं, किसान और अन्य वर्ग भी पूंजीपति व्यवस्था के कारण पहले से अधिक तकलीफ में पड़ गया। सामंतवादी समाज में सामंतों की संख्या अधिक होने के कारण साधारण प्रजा भी उनके आपसी झगड़ों से लाभ उठा सकती थी। उनकी व्यक्तिगत प्रकृति और प्रवृत्तियों में भी स्वभावतः विभिन्नता होती थी। इससे भी समय-समय पर प्रज्ञा की दशा में परिवर्तन होने की गुंजाइश थी। सामंत तथा प्रजा के बीच कुछ व्यक्तिगत संबंध भी रहता था। इस कारण भी उन्हें समय-समय पर राहत मिलती थी। केन्द्रीय कोठियों में होते हुए भी वह बहुत हद तक विकेन्द्रित था। उत्पत्ति के साधन उत्पादक के हाथ में होने से कारीगर कोठियों के बाहर भी थोड़ी बहुत अपनी आवश्यकता का उत्पादन कर लेते थे। इस कारण भी उन्हें अपनी जिन्दगी की आवश्यकता के लिए पूर्ण रूप से सामंतों पर आश्रित नहीं रहना पड़ता था। वस्तुतः यद्यपि सामंत प्रथा में शासन का प्रकार केन्द्रीय था, फिर भी उनकी संख्या बहुत होने के कारण वह केन्द्र भी विकेन्द्रित दशा में होता था। लेकिन पूंजीपति व्यवस्था में केन्द्रीयकरण बढ़ता ही गया। धीरे-धीरे धनिकों का गुट बनता गया। और छोटी कंपनियां टूटकर बड़ी कंपनियों में मिलने लगीं। प्रजा और पूंजीपतियों में अंतर बढ़ता ही गया। धीरे-धीरे धनिकों का गुट बनता गया। और छोटी कंपनियां टूटकर बड़ी कंपनियों में मिलने लगीं। प्रजा और पूंजीपतियों में अंतर बढ़ता ही गया। उत्पत्ति के साधन प्रजा के हाथ से छिनकर केन्द्रित होने से उनका संपूर्ण रूप से आर्थिक निःशस्त्रीकरण हुआ। इस कारण स्वावलंबी उत्पत्ति प्रथा का नाश हो गया, तथा सारी प्रजा अपनी आवश्यकतों के लिए पूर्ण रूप से इन धनिकों के सहारे हो गयी और उनकी बतायी हुई हर शर्त मानने के लिए बाध्य हुई। ऐसी दशा में जनता की राय लेकर प्रतिनिधि तंत्र को लोकतंत्र कहना लोकतंत्रता का मजाक करना है। क्योंकि गरज से दबी हुई जनता स्वतंत्र राय देने में असमर्थ होती है। इस तरह औद्योगिक-क्रांति के कारण पूंजीवाद ने फैलकर लोकतंत्रता की सफल क्रांति को भी विफल कर दिया। इस प्रकार प्रजातंत्र की महान भावनाएं वैधानिक पुस्तकों के पृष्ठों पर बंधी पड़ी रहीं। वह कभी वास्तविक नहीं हो सकीं। प्रजा की दशा ठीक उसी प्रकार की हो गयी, जिस प्रकार किसी किसान को कचहरी से मुकदमा जीत कर अपने हक में डिग्री का कागज पाने के बावजूद उस जमीन पर अपना कब्जा न पाने से हो जाती है।

अंधाधुंध उत्पत्ति का नतीजा : पूंजीपति समाज अंधाधुंध उत्पत्ति के कारण उपभोग सामग्री का अपव्यय होने लगा। मनमानी उत्पत्ति करते समय कोई यह नहीं देखता कि समाज को कौन-सी सामग्री कितनी तादाद में चाहिए और उसका उत्पादन किस प्रकार का हो। हरएक उत्पादक तात्कालिक स्थिति के अनुसार जिस सामग्री के उत्पादन से लाभ अधिक होता है उसी के उत्पादन में सारा कच्चा माल समाप्त कर देता है। बेकारी बढ़ने से प्रजा की क्रय शक्ति का ह्रास होने के कारण उत्पादित सामग्री के उपभोगियों की संख्या घटती गयी। कच्चा माल पैदा करने

वाले किसानों को मांग की निश्चितता न होने के कारण उत्पादन के अनुपात का कोई सिलसिला या हद न रह गयी। किसी एक साल किसी एक प्रकार के माल की मांग अधिक होने पर किसान दूसरे साल उस माल की पैदावार बढ़ाकर जब देखते हैं कि उस साल उसके पैदा किये हुए माल की मांग कतई नहीं है, तो उनकी हालत अनिश्चित और डावांडोल हो जाती है। और वे किंकर्तव्य-विमूढ़ और हतोत्साह हो जाते हैं। अतः उनको जिन्दगी से कोई दिलचस्पी न होने के कारण वे पैदावार बढ़ाने के प्रति भी उदासीन हो जाते हैं। इस प्रकार *पूंजीवादी व्यवस्था में संसार की हालत ऐसी हो गयी कि जहां एक ओर लोग अत्यधिक उत्पत्ति के कारण विभिन्न प्रकार के अनाज तथा अन्य उपभोग्य वस्तुओं का ध्वंस करते रहे, वहीं दूसरी ओर लाखों और करोड़ों नर-नारी भूख से तड़प-तड़प कर मरते रहे। इस प्रकार हम देखते हैं कि मानव समाज ने जिस हिंसा, शोषण, गुलामी तथा भूखमरी से बचने के लिए सामंत प्रथा का नाश किया, पूंजीवादी समाज में उनका संकट घटने के बजाय बढ़ गया। साथ ही उनकी जिन्दगी अधिकतर खतरे में पड़ गयी। अतः समाज को अपनी स्थिति की रक्षा के लिए फिर से उपाय सोचना पड़ा। इस उपाय सोचने के सिलसिले में उसने कई प्रयोग किये। उनमें से मुख्य प्रयोग थे समष्टिवाद और फासिस्ट वाद।*

सौ वर्ष पहिले जिस समय प्रजा पूंजीवाद के कारण अधीर थी उस समय उनकी सम्मिलित अधीरता ने जन्म दिया कार्लमार्क्स को, जिसने अपने पांडित्य और स्वाभाविक वैज्ञानिक दृष्टि से सारी स्थिति का अध्ययन किया।

मार्क्स का दर्शन : उसने देखा कि शासन सत्ता को विकेन्द्रित करने की पिछली क्रांति विफल हुई और वह उसका कारण ढूंढ़ने लगा। कारण ढूंढते हुए उसने देखा कि प्रजा की सारी संपत्ति पूंजीपति के कब्जे में है। और इस कारण वह जनता को कस कर निर्दलित करते रहे। उसने यह भी देखा कि जब तक जिन्दगी की आवश्यक सामग्री पूंजीपति के हाथ में रहेगी तब तक प्रजा को उन्हीं के हाथ रहना पड़ेगा। अतः उसने समाज के सामने यह सुझाव रखा कि जब तक भोग्य सामग्री पर समाज का कब्जा नहीं होगा तब तक वह उनका सही उपभोग नहीं कर सकेगा। और तब तक शासन सत्ता पर भी उसका सही कब्जा होना असंभव है। यह भोग्य सामगी पर कब्जा तभी हो सकता था जब सामग्री के उत्पादन और साधन पर प्रजा की सत्ता कायम हो। क्योंकि इतिहास बतलाता है कि शासन क्षेत्र और आर्थिक क्षेत्र में से किसी एक क्षेत्र पर जब केन्द्रीय वर्ग का कब्जा हो जाता है तो वह कब्जा दूसरे क्षेत्र पर भी फैल जाता है। इसलिए यह आवश्यक था कि शासन यंत्र और उत्पत्ति यंत्र दोनों पर प्रजा की सत्ता कायम हो। इतिहास के अनुभव से ऐसा सोचना स्वाभाविक था। अतः मार्क्स की बातें लोगों की समझ में आने लगीं और उन्हें यह स्वीकार भी होने लगीं। इस आधार पर प्रजा ने फिर क्रांति की। प्रजातंत्रता की पहली क्रांति जिस प्रकार शासन यंत्र पर कब्जा करने की थी उसी प्रकार यह क्रांति उत्पादन यंत्र को दखल करने की थी। पहले जैसी यह क्रांति भी कहीं सफल, कहीं आंशिक रूप से सफल और कहीं-कहीं विफल भी हुई। लेकिन यह विचारधारा संसार भर में फैल गयी और लोग सोचने लगे कि फिर से संसार में शांति और स्वतंत्रता स्थापित होने का एक रास्ता निकला।

पूंजीपति बनाम प्रजा : दूसरी ओर कुछ लोगों ने ऐसा देखा कि सारी खुराफातों की जड़ पूंजीपतियों की अंधाधुंध उत्पत्ति है। उन्होंने यह भी देखा कि प्रतिनिधि तंत्र के कारण समस्त प्रजा में गैर जिम्मेवारी फैल जाने के नतीजे से संसार में बहुत घपला हो रहा है। प्रजा ने जब एक प्रतिनिधि चुन लिया तब उसने समझा कि समाज की सारी जिम्मेदारी उस प्रतिनिधि पर होगी और वे सब-के-सब अब निश्चिंत होकर बैठ सकते हैं। निश्चिन्तता के कारण उनकी विचार शक्ति पंगु होने लगी। वे धीरे-धीरे बेहोश होते गये। इस प्रकार समाज में दो ही वर्ग रह गये थे— मनमानी उत्पत्ति करने वाला पूंजीपति वर्ग और प्रतिनिधि पर भरोसा करने वाला निश्चिन्त बेहोश प्रजा वर्ग। इसके नतीजे से उसी पूंजीपति वर्ग ने बेहोश प्रजा का प्रतिनिधित्व भी खरीद लिया। अतः उनके विचारों में यह आवश्यक था कि कोई ऐसा उपाय निकाला जाय कि समाज की व्यवस्था सचेतन, कुशल तथा परिस्थिति के अनुकूल हो। प्रजा के बेहोश होने के कारण प्रजातंत्र पर उनकी कोई आस्था न थी। अतः उनके विचार से आवश्यकता इस बात की थी कि एक जबरदस्त सचेतन तथा योग्य दल का पूंजीपति और प्रजावर्ग दोनों पर आधिपत्य स्थापन करने में ही सुश्रृंखला और सुव्यवस्था स्थापित हो सकेगी।

लेकिन किसी दल के लिए ऐसा करना पूंजीपति या प्रजा वर्ग की सम्मति से नहीं हो सकता था। जब पूंजीपति के कब्जे में शक्ति और संपत्ति पहले ही मौजूद थी तो वे भला कब इस बात से सहमत होते कि उनपर दूसरे हॉवी हो जायं? बेहोश प्रजा के दिमाग में यह वहम मौजूद था कि सारी व्यवस्था उनकी राय से ही चल रही है। तो उनकी बिना राय के किसी दल विशेष का उनपर आधिपत्य वे कैसे स्वीकार करते? एक मजबूत दल विशेष से संचालित समाज में इन दोनों वर्ग की स्थिति नीचे गिरती थी। यद्यपि उसमें से एक ही स्थिति वास्तविक और दूसरे की काल्पनिक थी। अतएव जो लोग समाज की सुव्यवस्था के लिए चिन्तित थे वे एक मजबूत और बेहोश दल बनाकर सारे समाज पर जबरदस्ती आधिपत्य विस्तार करना चाहते थे, ताकि समाज की व्यवस्था, उत्पादन और बंटवारे का सुसंचालन हो सके। लेकिन चूंकि इस काम के लिए उन्हें किसी वर्ग का सहयोग प्राप्त नहीं हो सकता था इसलिए उनके लिए यह जरूरी था कि वे समाज के सभी वर्ग को जबरदस्ती निर्दलित करके ही इस व्यवस्था को कायम करें। ❑

विरासत

सफाई की देश-व्यापी मुहिम... रूपरेखा कैसी हो?

❑ जी. रामचंद्रन

जी रामचंद्रन गांधी-विचार और कार्य के प्रमुख स्तंभ थे। वे गांधीजी के संपर्क में 1921 में आये। विश्व में आणविक हथियारों के खिलाफ जनमत तैयार करने में उनकी भूमिका महत्त्वपूर्ण थी। वे गांधी-शांति प्रतिष्ठान के संस्थापक मंत्री तथा अग्रेजी 'गांधी-मार्ग' के संपादक थे। गांधी के स्वच्छता अभियान को राष्ट्रव्यापी बनाने के लिए 1949 में एक 'नेशनल सेनिटेशन ड्राइव' की योजना पेश की थी, जो यहां प्रस्तुत है। आशा है देश में चलाये जा रहे 'राष्ट्रीय स्वच्छता अभियान' के संचालक इससे मार्गदशन पा सकेंगे। –सं.

बुनियादी काम : बापू हमेशा आग्रहपूर्वक यह कहते थे कि सफाई-काम ग्रामसेवा का पहला कदम है। और जिसने गांव की सचमुच कोई सेवा की है, वह इस चीज को स्वीकार करेगा। यदि ऐसा है तो क्या कारण है कि बहुत से कार्यकर्ता गांव के सुधार के लिए और बहुत-सी बातें कर रहे हैं, लेकिन सफाई-काम की ओर उनका ध्यान नहीं है? हिन्दुस्तान में न जाने कब यह एक परंपरा बन गयी कि गंदगी के निराकरण का सर्वोत्तम उपाय गंदगी से दूर भागना है। आज ग्रामसेवा में लगे हुए बहुत से कार्यकर्ता भी कुछ ऐसी ही मनोवृत्ति रखकर इस बुनियादी काम से दूर ही रहते हैं।

यह स्थिति भयंकर है। यदि सफाई नहीं हुई तो हमारा बाकी सारा काम कच्चा रह जायेगा। क्योंकि जिसे हम एक छोर पर गंदगी की शकल में देखते हैं, वही दूसरे छोर पर रोग और मृत्यु बनकर प्रकट होता है। ऐसा कहा जा सकता है कि सफाई पर ध्यान दिये बिना ग्रामसेवा का कार्य करना कुछ वैसा ही है, जैसा कि मरने की तैयारी करने के बाद जीने की इच्छा करना।

विधायक कार्यक्रम : और फिर भी खूबी यह है कि सारा कूड़ा-कचरा, जो जीवन के लिए इतना भयंकर है, यदि खेत और बगीचे के लिए उपयोगी खाद के रूप में बदल दिया जाय तो खुद जीवन का स्रोत ही बन जाता है। इस तरह देखने पर विदित होगा कि सफाई-काम गंदगी दूर करने का सिर्फ एक निषेधक कार्यक्रम नहीं है। वह जीवन और संपत्ति के निर्माण का एक विधायक कार्यक्रम है। ऐसा कार्यक्रम यांत्रिक नहीं हो सकता। उसे तो सच्ची शिक्षा का कार्यक्रम बनना होगा।

आज की भयानक हालत : सफाई-काम की वस्तुस्थिति खासकर गांवों में बड़ी शोचनीय और लज्जाजनक है। सारी खुली हुई जगह, तालाब के किनारे, गांव के सारे प्रवेश-द्वार, पगडंडियां, गाड़ी के रास्ते, यहां तक की कुएं और मंदिर के आसपास की जगह भी ग्रामवासियों के द्वारा शंका-निवारण के लिए उपयुक्त मानी जाती है। पास में यदि कोई नदी या नाला हुआ तो उसके किनारे भी उसी तरह अस्वच्छ किये जाते हैं, और सारा पानी दूषित कर दिया जाता है। मूर्तियां और मंदिर तक हमारी इस अस्वच्छता की आदत के शिकार हुए हैं। उनके गर्भ-गृह अस्वच्छ रहते हैं, जगह-जगह घी और तेल के दाग दीखते हैं, और उनसे दुर्गंध आती है। बच्चे कचरे में खेलते रहते हैं और मां-बाप उनकी परवाह नहीं करते हैं। मनुष्य और पशु एक-सी मलिन परिस्थितियों में रहते हैं। इसका यही परिणाम हुआ है कि त्वचना के रोग, खासकर बच्चों में बहुत बढ़ गये हैं। सारी हवा, मिट्टी और पानी, वे सब भांति-भांति के उपायों द्वारा दूषित कर दिये गये हैं।

व्यक्तिगत और सामुदायिक स्वच्छता : गरीब ग्रामवासियों में भी कुछ-न-कुछ व्यक्तिगत स्वच्छता मिलती है। उसकी हमारे यहां एक परंपरा है और लोगों ने दीर्घकाल से उसकी रक्षा की है और व्यक्तिगत स्वच्छता का एक मापदंड स्थिर हो गया है। पर उनमें सामुदायिक स्वच्छता कुल नहीं है। उसमें वे बिल्कुल असफल हो गये हैं। वे अपना शरीर साफ रखते हैं, अपने घर के भीतर का भाग भी काफी स्वच्छ रखते हैं, लेकिन उसके बाहर क्या हो रहा है इसकी ओर किसी का ध्यान नहीं है।

सदोष ग्रामीण जीवन : तो हमारी देशव्यापी ग्राम-समस्या का रूप यह है कि हमें ग्रामीणों की व्यक्तिगत स्वच्छता को सामुदायिक स्वच्छता की परिधि तक व्यापक बनाना सिखाना है। व्यक्तिगत स्वच्छता सामुदायिक मलिनता के आगे नहीं ठहर सकती। और इसमें कुछ दोष तो ग्रामीणों का है ही, लेकिन अधिकांश दोष ग्रामीण-जीवन की कठिन परिस्थितियों का है। गांव किसी योजना के अनुसार नहीं बनाये गये हैं, वे तो किसी तरह बन गये हैं। घरों के बीच में इतनी कम जगह छोड़ी जाती है कि गंदगी इकट्ठी होती ही है। फिर न तो वहां सार्वजनिक शौचालय है, न मूत्रियां, नालियां, न नहाने-धोने के घाट इत्यादि। कूड़ा-कचरा इकट्ठा करने के जगहें आदि भी नहीं हैं। संक्षेप में स्वच्छता के लिए आवश्यक कोई भी चीज वहां नहीं है। इसलिए गांव को केवल साफ करना काफी नहीं है, सफाई की आवश्यक सुविधाएं देना भी उतना ही जरूरी है।

प्रौढ़ शिक्षा का कार्यक्रम : स्वच्छता के सही कार्यक्रम का उद्देश्य गांवों को यांत्रिक ढंग से साफ कर देना नहीं हो सकता। ग्रामवासियों में स्वच्छता की एक बलिष्ठ चेतना का निर्माण और विकास की

वह उद्देश्य है। तो सवाल केवल झाड़ुओं और स्वच्छता-संरक्षक दवाओं का नहीं है, मन की शिक्षा का है। हमें उनकी मनोवृत्ति का शोधन करना है। तभी गांवों के स्थाई परिशोधन की नींव पड़ेगी। ऐसा समझना चाहिए कि सफाई का यह सारा कार्यक्रम प्रौढ़ों की शिक्षा का एक श्रेष्ठ कार्यक्रम है।

नैतिक अपराध : हमारा अंतिम उद्देश्य एक ऐसी देशव्यापी मनोवृत्ति का निर्माण करना है जो गंदगी को वैसा ही असह्य मानेगी जैसा वह धोखा, झूठ, चोरी आदि नैतिक दोषों को मानती है। जो गंदगी के प्रति लापरवाह रहता है, उसकी स्थिति उस मनुष्य की-सी होनी चाहिए जो किसी नैतिक अपराध में मदद करता है। किसी नैतिक दोष का विचार करते हुए मनुष्य जैसा बेचैन हो जाता है वैसा ही बेचैन और सजग उसे गंदगी का ख्याल करके होना चाहिए।

तरीका : तो इस प्रयत्न में हमारा काम करने का तरीका मनोवैज्ञानिक होना चाहिए। कार्यकर्ता एकदम से झाड़ू और फावड़ा लेकर कूड़ा-कचरा साफ करने में जुट जायं तो कोई नतीजा नहीं निकलेगा। हमने यह काम बहुत समय तक किया है। फिर भी लोगों के दृष्टिकोण में कोई फर्क नहीं हुआ है। कई बार तो हम केवल हंसी के पात्र बनकर रह गये हैं। अपनी आरंभिक जल्दबाजी से तो हम गांव के लोगों को नाराज कर देते हैं या उनके लिए मनोरंजन की सामग्री बन जाते हैं। हमारा सच्चा साध्य ग्रामीणों को ही स्वच्छता की अनिवार्य आवश्यकता समझा देना है और फिर उन्हें इस काम के लिए तैयार कर देना है, जिससे कि ये न केवल गांव को साफ करने में लग जायेंगे बल्कि साल भर इस काम को जारी रखकर यहां स्थायी स्वच्छता का निर्माण करेंगे।

यदि ग्रामसेवक खुद ही सारा काम करके ग्रामसफाई का आरंभ करता है तो उसका यह प्रयत्न आगे नहीं बढ़ता, इसी बिन्दु पर उसकी समाप्ति भी हो जाती है।

योजना : यह अस्वच्छता इतनी पुरानी हो गयी है और इतनी व्यापक है कि उसे दूर करने के लिए एक निश्चित समय के भीतर हमें सामूहिक प्रयत्न करना पड़ेगा। आवश्यक तैयारी करने के बाद हमें चाहिए कि हम एक वर्ष के लिए एक (नेशनल सेनिटेशन ड्राइव)—''देश व्यापी सफाई मुहिम'' का आयोजन करें। उसकी रूपरेखा ऐसी होगी—

1. यथासंभव ज्यादा से ज्यादा जगहों में एक माह स्वच्छता-संबंधी स्थानीय परिस्थितियों का अध्ययन करने के लिए देना। इससे हमारे पास आगे काम करने के लिए आवश्यक आधार मिल जायेगा।

2. एक माह तक एक लाख ग्रामसेवकों को ग्राम-सफाई के आदर्शों और उसके उपायों की शिक्षा देना। इस काम में रचनात्मक कार्य करने वाले सब संघ और सारी संस्थाएं तथा केन्द्रीय और प्रांतीय सरकारों के सफाई विभागों को भाग लेना चाहिए। गांव के मुंसिफ, पंचायत के कर्मचारी, शिक्षक, सिपाही, डॉक्टर और सैनिकों आदि को भी एक माह की यह शिक्षा लेनी चाहिए।

3. कार्यक्रम का एक विस्तृत खाका सावधानी से बनाना चाहिए और विभिन्न प्रांतीय भाषाओं में लोगों तक पहुंचाना चाहिए। यह विस्तृत कार्यक्रम ऐसा होना चाहिए कि प्रौढ़ तथा किशोर, लड़के और लड़कियां, और छोटे-छोटे बच्चे भी काम में हिस्सा ले सकें। पत्र-पत्रिकाओं को हमारे कार्यक्रम के इस प्रचार में मदद करनी चाहिए, जिससे कि लोगों तक वह पहुंच जाय।

4. अतिम कार्यक्रम के मुख्य-मुख्य अंग ऐसे होंगे—

(क) कुओं को साफ करना, उनकी मरम्मत करना, और इस तरह पीने के पानी की रक्षा करना।

(ख) सस्ते और सादे सार्वजनिक शौचालय और स्नान-घर बनवाना तथा लोगों को उनका ठीक-ठीक उपयोग सिखाना।

(ग) सड़क, रास्ता, मैदान, तालाब या नदी के घाट आदि का लोगों द्वारा जो अशुचि उपयोग किया जाता है, वह रोकना, और इसके लिए कुछ सामाजिक नियमन की योजना करना।

(घ) नक्शों, तस्वीरों, मैजिक लैंटर्न के प्रदर्शनों आदि के द्वारा अस्वच्छता की हानियों पर साक्षात् शिक्षा की व्यवस्था करना और लोगों को यह समझाना कि बीमारियां कैसे पैदा होती हैं और कैसे रोकी जा सकती हैं।

(ङ) आज 'अधिक अन्न उपजाओ' के प्रयत्न में राष्ट्रीय नेता जैसा सक्रिय भाग ले रहे हैं, ऐसा ही वे इस उद्योग में भी लें।

(च) गांवों और मुहल्लों में सर्वश्रेष्ठ सफाई काम के लिए पुरस्कार रखे जायं और बांटे जायं तथा प्रांतों के और देश के सर्वश्रेष्ठ कार्यकर्ता राष्ट्रीय वीर घोषित किये जायं, जैसा कि सोवियत रूस में शूर सैनिकों के लिए किया जाता है। काम ऐसे ढंग से किया जाय कि सर्व के अंत में देश भर में हर जगह स्थाई सफाई-संघ या मंडल बन जायं। सफाई मंडलों का संगठन उसी पद्धति पर किया जाय, जिस पद्धति पर चरखा-संघ आज कताई-मंडलों का कर रहा है।

टिप्पणी : यह विवरण अंतिम नहीं है, विषय को स्पष्ट करने के लिए दिया गया है। उसमें संशोधन, परिवर्धन और परिवर्तन किया जा सकता है।

कुछ हिदायतें : काम के संबंध में निम्नलिखित निर्देश ध्यान रखने योग्य हैं :

1. काम में एकाग्रता होनी चाहिए। वह संयुक्त हो। विस्तृत होकर कमजोर न हो जाय। हरएक कार्यकर्ता को चाहिए कि वह अपने काम का क्षेत्र तय कर ले और काम करने के पहले वहां की स्थितियों की पूरी जानकारी कर ले।

2. हरएक कार्यकर्ता काम करने के पहले अपनी योजना गांव के कुछ व्यक्तियों को समझा दे और उनकी मानसिक अनुकूलता प्राप्त करके आगे बढ़े। किसी की

सहानुभूति प्राप्त किये बगैर केवल अहंकार से काम का बोझ न उठा ले।

3. लोगों की इस तरह मानसिक अनुकूलता लेकर पहला काम करना है। और पहला काम है, सड़क, रास्ता, कुंआ, तालाब, नदी के तट, घर पर पिछवाड़ा, नालियां, गांव के भीतर और बाहर की खुली जगहें आदि की दशा का निरीक्षण।

4. परिस्थितियों के इस निरीक्षण के बाद कार्यकर्ताओं और उनके सहायकों को ऐसे स्थानीय निवासियों की, जिन्हें अपने गांव के सुधार में अनुराग है, एक छोटी-सी सभा बुलानी चाहिए और उनके साथ अपने निरीक्षण के परिणाम पर चर्चा करनी चाहिए। हमारी योजना के अनुसार गांव की इस छोटी सभा के लोग मानों हमारे प्रौढ़ शिक्षण का पहला वर्ग बन जायेंगे।

इसके बाद थोड़े से स्थानीय आदमियों को और जुटाना चाहिए और फिर झाड़ू, फावड़ा और टोकनी लेकर किसी ऐसे गंदे स्थान पर आक्रमण करना चाहिए, जिसे लोग सचमुच अपने गांव के लिए शर्मनाक मानते हैं। हमारे प्रयत्न का यह आरंभ अत्यन्त तेजस्वी होना चाहिए और उसके अंत में उस मलिन जगह को सचमुच बिल्कुल स्वच्छ बन जाना चाहिए, जिससे कि गांव के लोग यह साफ-साफ देख सकें कि कैसा फर्क हो गया है।

5. हमारे काम का यह पहला हिस्सा एक अवधि ले सकता है, लेकिन उसके पूर्ण हो चुकने पर हमें रुकना चाहिए और यह देखना चाहिए कि गांव पर उसका क्या प्रभाव हुआ है। अगर प्रभाव अच्छा हुआ हो तो काम आगे बढ़ाना चाहिए। नहीं तो दुबारा गांव वालों के मन को स्पर्श करने का प्रयत्न करना चाहिए।

6. घर-घर जाकर आदमियों से मिलना चाहिए और हरएक घर के आसपास की नालियां और बाकी जगह साफ करने में उनकी मदद मांगनी चाहिए। घर के आदमियों को स्वच्छता का शिक्षण देना चाहिए, नहीं तो जो एक दिन साफ किया हुआ है, वह दूसरे दिन फिर उतना ही गंदा हो जायेगा।

7. काम जैसे-जैसे बढ़ेगा, कार्यकर्ता और उनके सहायकों की समझ में आ जायेगा कि सचमुच उत्साही लोग कौन हैं। ऐसे आदमियों से घनिष्ठता बढ़ानी होगी। ये सब लोग मिलकर अपना एक दल बना लेंगे और यह दल समय-समय पर इकट्ठा हुआ करेगा और गांव में सफाई की नई-नई योजनाएं बनायेगा और उनपर अमल करेगा।

8. इस सारी हलचल का नेतृत्व न तो कार्यकर्ता को करना चाहिए न उसके सहायकों को। नेता का पद स्थानीय आदमियों को मिलना चाहिए। किसी प्रभावशाली स्त्री या पुरुष को चुनकर प्रधान-कार्यकर्ता बनाना चाहिए। और ऐसे ही किसी आदमी को अपने सफाई-संघ का मंत्री। और बाकी सब उत्साही लोगों को इस संघ का कार्यकारी सदस्य बनाना चाहिए।

9. एक या दो माह काम करने के बाद संघ को एक निश्चित अवधि तय कर नियम-पूर्वक अपनी सभाएं करनी चाहिए। वह सभाएं सचमुच प्रौढ़ शिक्षण की कक्षाएं होंगी।

10. जब काम काफी आगे बढ़ चुके, तो संघ को अपनी ही जगह से एक छोटी निधि का संग्रह करना चाहिए और उतना ही पैसा वहां की पंचायत या सरकार के ग्राम विकास विभाग से मांगना चाहिए। इस निधि का उपयोग अपने काम के लिए आवश्यक औजार, जंतुनाशक दवाएं आदि बनाने या खरीदने में होगा। उसी से टट्टियां और मूत्रियां भी बनायी जायेंगी।

11. नालियों भी बनानी चाहिए और हरएक घर को अपने घर की नाली का खर्च देना चाहिए। (फिरका-डेवलपमेंट की योजना के अनुसार तमिलनाडु के गांवों में ऐसा ही हो रहा है। प्रत्येक गांव अपनी नालियों का सारा खर्च खुद चुकाता है। सरकार उन्हें केवल निर्धारित मूल्य पर सीमेंट देती है और सही सलाह।)

12. इस सफाई संघ को स्थाई संस्था

स्वच्छता पर गांधीजी के विचार

''हमारे गांवों में रहने वाले प्रत्येक बच्चे, पुरुष या स्त्री की प्राथमिक शिक्षा के लिए, घर-घर में चरखा पहुंचाने के लिए, संगठित रूप से सफाई और स्वच्छता के लिए ग्राम पंचायतों की जिम्मेदारी होनी चाहिए।'' (गांधी वाङ्गमय, भाग-19, पृ. 217)

× × ×

''गुरुकुल के बच्चों के लिए स्वच्छता और सफाई के नियमों के ज्ञान के साथ ही उनका पालन करना भी प्रशिक्षण का एक अभिन्न हिस्सा होना चाहिए। इन स्वच्छता निरीक्षकों ने हमें लगातार चेतावनी दी कि स्वच्छता के संबंध में सब कुछ ठीक नहीं है। स्वच्छता पर आगंतुकों के लिए वार्षिक व्यावहारिक सबक देने के सुनहरे मौके को हमने खो दिया।''

(20 मार्च 1916, गुरुकुल कांगड़ी, गांधी वाङ्गमय, भाग-13, पृ. 264)

× × ×

''इस तरह की संकट की स्थिति में तो यात्री परिवहन को बंद कर देना चाहिए। जिस तरह की गंदगी और स्थिति इन डिब्बों में है, उसे जारी नहीं रहने दिया जा सकता, क्योंकि वह हमारे स्वास्थ्य और नैतिकता को प्रभावित करती है। निश्चित तौर पर तीसरी श्रेणी के यात्री को जीवन की बुनियादी जरूरतें हासिल करने का अधिकार तो है ही। तीसरे दर्जे के यात्री की उपेक्षा कर हम लाखों लोगों को व्यवस्था, स्वच्छता, शालीन जीवन की शिक्षा देने, सादगी और स्वच्छता की आदतें विकसित करने का बेहतरीन मौका गंवा रहे हैं।''

(25 सितंबर 1917, गांधी वाङ्गमय, भाग-13, पृ. 264 व 550)

बन जाना चाहिए और गांव की सफाई का काम उसे हमेशा के लिए अपने हाथ में ले लेना चाहिए।

13. सफाई एक निषेधक प्रक्रिया ही नहीं है, वह एक दोहरी विधायक प्रक्रिया है। पहले कूड़ा-कचरा दूर किया जाता है। उसके बाद उसकी जगह पर हमें सुंदरता लाने की कोशिश करनी चाहिए। उदाहरण के लिए गांव के भीतर और बाहर की खुली जगहों की गंदगी दूर कर देने से ही हम उन्हें स्वास्थ्यप्रद और सुंदर नहीं बना सकते। यदि हमने केवल इतना ही किया तो उसे दुबारा दूषित करने का मोह लोगों को हो सकता है। वहां शाक-भाजियां, फल-फूल, तुलसी के पौधे आदि लगा देने चाहिए। या और कुछ नहीं तो लकड़ी की कुछ बेंचें ही रख देनी चाहिए। गांवों में उद्यान या बालों के लिए क्रीड़ांगण आदि भी बनाने चाहिए।

14. इसका ध्यान रहे कि सफाई केवल कार्यकर्ता और उनके सहायकों को ही करनी नहीं है, सारे गांव को उसके लिए तैयार कर लेना है।

उपसंहार : ज्यों-ज्यों हमारी यह मुहिम आगे बढ़ेगी, त्यों-त्यों हमें नये विचार और उपाय सूझेंगे और उत्साह मिलेगा। ऐसी देश-व्यापी सफाई की हलचल अपने अनुभव से कुछ नये आविष्कार करेगी। वह हर जगह किसी एक ही ढंग पर नहीं चलेगी, स्थान की विशेषता के अनुसार उसके नये नये आकार और प्रकार बनेंगे। यही उचित और लाभदायी है।

सार की बात यह है कि हमें यह आंदोलन अखिल भारतीय प्रमाण पर करना है और उसका आरंभ प्रबल वेग से होना चाहिए। यदि ऐसा हुआ तो यह हमारा आंदोलन अपना मार्ग खुद ही बनाता जायेगा। सर्व सेवा संघ इस काम पर अपनी नजर रखेगा। संभव है, आंदोलन कुछ बिल्कुल नयी और कल्पित शक्तियों को प्रकट करेगा, जो शायद देशभर के ग्राम-सेवा के कार्य में मौलिक क्रांति कर दे। ('सर्वोदय', नवंबर 1949 से साभार) ❑

सत्यान्वेषण

सत्य के प्रयोग : सच पूरा पर कथा अधूरी

❑ अनुपम मिश्र

आत्मकथाओं के बड़े ढेर से अलग है गांधीजी की आत्मकथा। जो बिल्कुल अधूरी होते हुए भी सच पूरा बताती है। भारतीय भाषाओं में आज इस पुस्तक की कोई 23,65,000 प्रतियां पाठकों तक पहुंची हैं। सन् 1927 से अब तक अनेक भाषाओं में पाठकों के हाथ लगातार पहुंचती जा रही इस आत्मकथा में ऐसा है क्या? सच पूछा जाये तो इसमें गांधीजी की कहानी तो बस सूत्र की तरह, धागे की तरह चलती है। मुख्य तो है उस धागे में पिरोये गये उनके सत्य के प्रयोग।-सं.

तहलका मचा देती हैं, आत्मकथाएं। पर शायद थोड़े ही समय के लिए। आत्मकथाएं कौन लोग लिखते हैं? जो लोग अपने कुछ अच्छे कामों के कारण समाज का प्यार पाते हैं या जो अपने बुरे कामों के कारण बदनाम हो जाते हैं। आत्मकथा के लेखक अक्सर अपने जीवन के उतार पर पहुंचकर कलम उठाते हैं। अखबारों में इनके विवादास्पद लेख छपते हैं, टी. वी. आदि पर बहस होती है फिर सब बंद हो जाता है। थोड़े समय तहलका मचाने के बाद प्रायः ऐसी सभी आत्मकथाएं अक्सर फुटपाथ पर पड़ी दिखती हैं। ऐसी कथाएं उस व्यक्ति के पूरे जीवन का वर्णन करती हैं, फिर भी सच्चाई की तराजू पर अक्सर अधूरी ही रह जाती हैं।

आत्मकथाओं के इस बड़े ढेर से अलग है गांधीजी की आत्मकथा। जो बिल्कुल अधूरी होते हुए भी सच पूरा बताती है। इसका शीर्षक बड़ा अटपटा है : सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा। इसे लिखते समय गांधीजी का जोर आत्मकथा पर नहीं था, इसलिए उस शब्द को शीर्षक में पीछे रखा गया। सत्य के प्रयोग का वर्णन मुख्य था। इसलिए उसे आगे रखा गया। निकट के साथियों ने खूब आग्रह किया तब कहीं जाकर गांधीजी ने आत्मकथा लिखना तय किया। शुरू तो किया लिखना, लेकिन उन्हीं के शब्दों में, ''फुलस्केप क एक पन्ना भी पूरा नहीं हो पाया था कि इतने में बंबई में ज्वाला प्रकट हुई और मेरा शुरू किया हुआ काम अधूरा रह गया।'' यह बात वर्ष 1921 की है। उसके बाद तो गांधीजी एक के बाद एक नये कामों में लगते चले गये।

बीच में उन्हें गिरफ्तार कर यरवदा जेल, पुणे में रखा गया। यहां एक बार फिर निकट के साथियों ने अपना आग्रह और भी जोरदार ढंग से रखा। तब जेल में भी उनके हाथ में ढेरों तरह के काम थे। जेल से छूटने पर फिर वही तकाजा। मांग थी कि जल्दी से आत्मकथा लिख डालें और फिर वह वह और भी जल्दी पुस्तक रूप में छप जाये। पर गांधीजी के पास वक्त कहां था। उनके बारे में यह कहा जाने लगा था कि वह व्यक्ति अपने समय का मालिक था पर अपनी घड़ी का गुलाम! घड़ी की सुईयां देख काम निपटाते थे, समय के एकदम पाबंद। अपनी कुटिया में साधारणजनों से लेकर ऊंचे दर्जे के नेताओं से दिनभर मिलते, हर रोज अनगिनत पत्र, नोट लिखते। एक हाथ लिखते-लिखते थक

जाता तो दूसरे हाथ से भी लिखने का अभ्यास कर डाला था। फिर आत्मकथा लिखकर उन्हें कोई लेखक तो बनना नहीं था। यह वही दौर था जब वे देश को एक नई भूमिका के लिए तैयार करने में दिन-रात जुटे थे। अपनी बात सब तक पहुंचाने के लिए उनके अपने अखबार भी थे। इसके लिए उन्हें अपनी तमाम व्यवस्तताओं के बाद भी हर हफ्ते कुछ-न-कुछ लिखना ही होता था। हल निकाला गांधीजी ने, ''तो फिर आत्मकथा क्यों लिखूं।''

इस तरह यह विचित्र कथा मूल गुजराती में 29 नवंबर, 1925 से 3 फरवरी 1929 तक साप्ताहिक किस्तों में 'नवजीवन' अखबार में छपी। फिर इसी का अंग्रेजी अनुवाद 3 दिसंबर, 1925 से 7 फरवरी, 1929 तक 'यंग इंडिया' के अंकों में क्रमशः छपा था। कई मिले-जुले कारणों से हिन्दी में अनुवाद का पहला खंड पुस्तक रूप में पहली बार सस्ता साहित्य मंडल, दिल्ली से सन् 1929 में छपा और फिर इसके अनेक संस्करण सामने आये। लेकिन गांधीजी की सभी रचनाओं का कॉपीराईट रखने वाला नवजीवन ट्रस्ट हिन्दी संस्करण पहली बार 1957 में छाप सका था। तब से अब तक इसके अनेक संस्करण निकल चुके हैं।

इन तीन भाषाओं में आज इस पुस्तक की कोई 14,56,000 प्रतियां पाठकों तक पहुंची हैं। अन्य भारतीय भाषाएं जोड़ें तो मलयालम में चार लाख 45 हजार, तमिल में लगभग एक लाख, कन्नड़ में एक लाख 20 हजार, मराठी में कोई एक लाख से ऊपर, तेलगू में 85 हजार, उड़िया में 34 हजार, असमिया में 15 हजार, बंगला में 10 हजार और उर्दू में हमारे देश में 11 हजार प्रतियां छप चुकी हैं। पंजाबी और संस्कृत में भी यह छपी है पर इन भाषाओं में कितनी प्रतियां छपी, यह पता नहीं चल पाया है। पाकिस्तान में भी इसका उर्दू संस्करण वहीं के प्रकाशकों ने छापा है।

भारतीय भाषाओं के अलावा सत्य के इस विचित्र प्रयोग को दुनिया की अनेक भाषाओं में भी अनूदित किया जा चुका है। इतना कि इस सबकी ताजी जानकारी जुटा पाना मुश्किल है। अंग्रेजी में यहां भी छपी और देश के बाहर भी छपी। फिर स्पेनी, पुर्तगाली, फ्रांसीसी, इतालवी, जर्मन, पोलिश, स्विस, तुर्की भाषा के अलावा अरबी में भी इसका अच्छा स्वागत हुआ। चीनी और जापानी, नोपाली और तिब्बती भाषा के संस्करण भी उपलब्ध हैं। कुछ ऐसी भी भाषाओं में इसके अनुवाद हुए हैं जिनके नाम प्रायः हम कम ही सुन पाते हैं, जैसे सरर्बोक्रोट!

सन् 1927 से अब तक अनेक भाषाओं में पाठकों के हाथ लगातार पहुंचती जा रही इस आत्मकथा में ऐसा है क्या? सच पूछा जाए तो इसमें गांधीजी की कहानी तो बस सूत्र की तरह, धागे की तरह चलती है। मुख्य तो है उस धागे में पिरोए गये उनके सत्य के प्रयोग। खुद गांधीजी के शब्दों में, ''मुझे आत्मकथा कहां लिखनी है? मुझे तो आत्मकथा के बहाने सत्य के जो अनेक प्रयोग मैंने किये हैं, उनकी कथा लिखनी है।''

इसीलिए पाठक को इसमें गांधीजी के पूरे जीवन को कस कर रखी राजनीति, उसके अन्य नायक, खलनायकों के बारे में कुछ भी वर्णन नहीं मिल पायेगा। वे तो इस कथा में उन प्रयोगों का वर्णन करते जाते हैं, जिन्हें उन्होंने सत्य के अलावा आध्यात्मिक प्रयोग भी कहा है। इसका कारण बताते हुए वे कहते हैं : ''राजनीति के क्षेत्र में हुए मेरे प्रयोगों को तो अब आत्मकथा लिखते समय) हिन्दुस्तान भी जानता है, यही नहीं, बल्कि थोड़ी-बहुत मात्रा में सभ्य कही गयी दुनिया भी जानता है।'' इस आत्मकथा में ब्रितानी राज, कांग्रेस, हिन्दू-मुसलमान या दक्षिण अफ्रीका के दौर में वहीं के शासकों के खिलाफ रत्ती भर जहर नहीं मिलेगा।

आत्मकथा में गांधीजी के विभिन्न संघर्षों, सत्याग्रहों का वर्णन, विवरण कई जगहों पर आता है। लेकिन वे लिखते हैं : ''सत्याग्रह में संघर्ष व्यक्तियों अथवा पक्षों के बीच नहीं माना जाता, सत्य और असत्य, सही और गलत के बीच माना जाता है।'' ऐसे मौकों पर अपने हिस्से की सच्चाई को नहीं, पूरी सच्चाई को ठीक से पकड़ लो और उसको पकड़ कर झूठ को, असत्य को पराजित करने के काम में लगा दो। उन्हीं के शब्दों में, ''इस तरह न कोई जीतता है, न कोई विजेता होता है। किसी को भी ऐसा नहीं लगता कि हम हार गये, हमने कुछ खो दिया है या हमारा तो अपमान हो गया है। जिस सीमा तक सत्य की विजय होती है, उस सीमा तक संबंधित पक्षों में से प्रत्येक पक्ष उल्लासित और विजय का साधन बनने में अपने को भागीदार मानता है। सच बात पकड़े रहने में कानून अपने आप हमारी मदद के लिए आ जाते है।''

यह आत्मकथा ही हमें बताती है कि चंपारण सत्याग्रह में गांधीजी ने नील की खेती को लेकर अंग्रेजों के अत्याचारों में कैसे उस सच को पकड़ा, फिर उसे अंत तक पकड़े रहे और इसी कारा अंग्रेजों का कानून उन्हें सजा देकर भी उनकी मदद के लिए दौड़ ही पड़ा। 'नील का धब्बा' नामक शीर्षक से लिखा यह अंश इस बात को बताता है कि गांधीजी ने यह मामला यूं ही नहीं उठा लिया था।

सच्चाई जानने में कितनी मेहनत करनी पड़ी, यह उस प्रसंग से ही पता चलता है। एक पक्ष था अत्याचार करने वाले अंग्रेजों का तो दूसरा थो भोले-भाले किसानों का। तीसरा पक्ष ऐसे प्रसिद्ध वकीलों का था जो इन गरीब किसानों के मुकदमे लड़ते थे। ऐसे मुकदमों की जोरदार पैरवी से लोग अपने मुवक्किलों के लिए कुछ व्यक्तिगत आश्वासन पा लेते थे। कभी-कभी असफल भी हो जाते थे। गांधीजी लिखते हैं, ''इन भोले किसानों से मेहनताना सभी लेते थे, त्यागी होते हुए भी ब्रजकिशोर बाबू या राजेन्द्र बाबू मेहनताना लेने में संकोच नहीं रखते थे। उनकी दलील यह थी कि पेशे के काम में मेहनताना न लें तो हमारा घर खर्च नहीं चल सकता और हम लोगों की मदद भी नहीं कर सकते। उनके मेहनताने में तथा बंगाल और बिहार के बैरिस्टरों को दिये जाने वाले मेहनताने के कल्पना में न आ सकने वाले आंकड़े सुनकर मैं सुन्न रह गया।''

यहां तो गांधीजी ने उस समय के दो सबसे बड़े वकीलों, और सबसे प्रसिद्ध सार्वजनिक व्यक्तियों के नाम लिए पर आगे के वर्णन में नाम हटा कर लिखते हैं : ''साहब को हमने ओपीनियन (राय) जानने

के लिए दस हजार रुपये दिये। हजार से कम की तो मैंने बात ही नहीं सुनी।''

इस सबको जान लेने के बाद गांधीजी की पहली राय तो थी, ''अब ये मुकदमे लड़ना तो हमें बंद ही कर देना चाहिए। जो रैयत इतनी कुचली हुई हो, जहां सब इतने भयभीत रहते हों, वहां कचहरियों के जरिये थोड़ा ही इलाज हो सकता है। लोगों का डर निकालना उनके रोग की असली दवा है। यह 'तीनकठिया' प्रथा (जबरन नील की खेती) न जाये, तब तक हम चैन से नहीं बैठ सकते।''

उधर गांधीजी ने हजारों किसानों से जो बातचीत की, उसमें भी सच्चाई का पूरा ध्यान रखा। हरेक किसान के बयान लेते समय, अंग्रेजों के खिलाफ शिकायत लिखते समय एक अच्छे वकील की तरह जिरह की जाती थी। जिस किसी भी शिकायत में झूठ, अतिशयोक्ति की गंध आती, उस पूरे मामले को वहीं छोड़ दिया जाता था। झूठ के पुलिंदे एकत्र कर सच की लड़ाई नहीं लड़ी जा सकती। इसे गांधीजी ने 'दूध में जहर' मिलाने जैसा माना था।

गांधीजी का सच, गांधीजी का राम दोनों पक्षों के बीच कैसा मजबूत सेतु बन जाता था, ऐसे किस्सों से, ऐसे अनेक प्रयोगों से भरी है यह आत्मकथा। इसमें बस 1921 तक का ही वर्णन है। इसके बाद का उनका जीवन और भी अधिक सार्वजनिक होता गया। उन्हीं के शब्दों में, ''शायद ही कोई ऐसी चीज हो जिसे लोग न जानते हों।'' इसलिए यहां आकर वे अपने पाठकों से विदा लेते हैं। जिस सत्य के आग्रह से उन्होंने आत्मकथा लिखना प्रारंभ किया था, उसे इन सब विवरणों को बताने के बाद वे और भी गहरे उतर कर लिखते हैं। ''सत्य को जैसा मैंने देखा है, जिस मार्ग को देखा है, उसे बताने का मैंने सतत प्रयत्न किया है, क्योंकि मैंने यह माना है कि उसके पाठकों के मन में सत्य और अहिंसा के विषय में अधिक आस्था उत्पन्न होगी।''

पूरे सच की यह अधूरी कथा दूध में धुली है और जहर से घुली आज की दुनिया में इसीलिए वर्षों बाद भी हलके-हलके तहलका मचा रही है। ❑

पर्यावरण

लागू हो राष्ट्रीय स्वच्छ वायु कार्यक्रम

❑ **अविनाश कुमार चंचल**

तीस अक्टूबर से 1 नवंबर 2018 तक जेनेवा में विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यूएचओ) वायु प्रदूषण और स्वास्थ्य पर पहली बार वैश्विक सम्मेलन आयोजित हुआ। इस सम्मेलन का थीम—'वायु गुणवत्ता में सुधार, जलवायु परिवर्तन से निबटना और जिंदगियों को बचाना' था। सम्मेलन में दुनियाभर के देशों की तरफ से प्रतिनिधि, स्वास्थ्य विशेषज्ञ, शोधकर्ता, पत्रकार और सिविल सोसाइटी के लोग शामिल रहे।

इस सम्मेलन से एक दिन पहले डब्ल्यूएचओ ने वायु प्रदूषण और बच्चों के स्वास्थ्य पर एक रिपोर्ट जारी की, जिसके अनुसार दुनियाभर में 18 साल से कम उम्र के 93 प्रतिशत लोग प्रदूषित हवा में सांस लेने को मजबूर हैं। 'वायु प्रदूषण और बाल स्वास्थ्य : स्वच्छ वायु निर्धारित करना' नामक इस रिपोर्ट में अनुमान लगाया गया है कि 2016 में वायु प्रदूषण से होने वाली श्वसन संबंधी बीमारियों से दुनिया में पांच साल से कम उम्र के 5.4 लाख बच्चों की मौत हुई। वायु प्रदूषण बच्चों के स्वास्थ्य के लिए बड़ा खतरा बन गया है। पांच साल से कम उम्र के 10 बच्चों की मौत में से 1 बच्चे की मौत प्रदूषित हवा से हो रही है।

उब्ल्यूएचओ के मुताबिक, हर साल दुनिया में लगभग 70 लाख लोगों की मौत वायु प्रदूषण से होती है। आज दुनियाभर में 10 में से 9 लोग खराब हवा में सांस लेने को मजबूर हैं। पर्यावरण संस्था ग्रीनपीस इंडिया की एयरोप्क्लिप्स रिपोर्ट के अनुसार, भारत के 280 शहरों में से 80 प्रतिशत शहरों की हवा में प्रदूषण राष्ट्रीय वायु गुणवत्ता मानकों से कहीं ज्यादा है।

वैसे तो ज्यादातर शहरों में बाहरी वायु प्रदूषण का स्तर डब्ल्यूएचओ के मानकों से कहीं अधिक है, लेकिन कई शहरों में तो यह 10 गुना से भी ज्यादा है। स्ट्रोक, हर्ट अटैक, फेफड़े का कैंसर और सांस संबंधी बीमारियों से मरने वालों की संख्या में एक चौथाई मृत्यु की वजह वायु प्रदूषण है। इसमें सबसे ज्यादा प्रभावित बच्चे, बूढ़े और महिलाएं हैं। डब्ल्यूएचओ की रिपोर्ट के अनुसार ही, 2016 में 29 प्रतिशत फेफड़े के कैंसर से, 24 प्रतिशत स्ट्रोक से और 25 प्रतिशत हृदय संबंधी बीमारियों से होने वाली मौतों की वजह वायु प्रदूषण रहा।

शिकागो यूनिवर्सिटी के अनुसार, यदि हवा की गुणवत्ता को डब्ल्यूएचओ के वायु गुणवत्ता मानकों के हिसाब से रखा जाये, तो भारत और चीन में लोगों के जीवन के चार साल बचाये जा सकते हैं। वायु प्रदूषण का हमारे दिमाग पर और गर्भवती महिलाओं पर बुरा प्रभाव पड़ता है। अध्ययन बताते हैं कि अमेरिका और चीन में थर्मल पॉवर प्लांड से निकलने वाले प्रदूषण में की गयी कमी से वहां के बच्चों के स्वास्थ्य पर अच्छा असर पड़ा है।

पेरिस जलवायु समझौते के वक्त ही यह साफ हो गया था कि जलवायु परिवर्तन की वजह से लोगों के स्वास्थ्य और उनके विकास पर गंभीर खतरा मंडरा रहा है। जलवायु परिवर्तन के खिलाफ कार्रवाई करने के लिए

जरूरी है कि स्वास्थ्य को केन्द्र में रखा जाये। यदि वैश्विक तापमान को कम रखने के लिए जलवायु परिवर्तन से निबटा जाता है, तो वायु प्रदूषण से होने वाली बीमारियों को काफी कम किया जा सकता है।

वायु प्रदूषण को कम करके अल्पकालिक जलवायु प्रदूषक (एसएलसी पीएस) के उत्सर्जन के साथ-साथ कार्बन उत्सर्जन को भी कम किया जा सकता है, जो बड़े स्तर पर प्राकृतिक संसाधनों, पानी, कृषि, चरम मौसम और स्वास्थ्य पर सीधा-सीधा असर करते हैं। संयुक्त राष्ट्र के आइपीसीसी की रिपोर्ट ने बताया है कि जलवायु परिवर्तन का खतरा बढ़ता ही जा रहा है और सारे देश सही रणनीति अपनाकर इससे निबट सकते हैं। वायु प्रदूषण से निबटने की रणनीतियों को अपनाना आसान है। यदि परिवहन, ऊर्जा, कचरा प्रबंधन और औद्योगिक सेक्टर में परिवर्तन किया जाये, तो इस पर काबू किया जा सकता है।

अक्षय ऊर्जा को अपनाकर भारत अर्थव्यवस्था को बढ़ा सकता है और ढेरों रोजगार भी दे सकता है। वर्ल्ड रिसर्च इंस्टीट्यूट (डब्ल्यूआरआई) की रिपोर्ट के अनुसार भारत 2022 तक अपने महत्त्वाकांक्षी अक्षय ऊर्जा लक्ष्य 175 गीगावॉट को प्राप्त करना चाहता है, जिससे निर्माण, प्रोजेक्ट डिजाइन, बिजनेस डेवलपमेंट, निगरानी और रख-रखाव जैसे क्षेत्र में 3,30,000 नयी नौकरियों की संभावना बन सकती है।

भारत सरकार को यह समझना जरूरी है कि थर्मल पॉवर प्लांट की वजह से भारत में एक लाख लोगों की असामयिक मौत हो जाती है। ऐसे में हमें कोयलाजनित बिजली की जगह अक्षय ऊर्जा की तरफ बढ़ना ही होगा। जिन क्षेत्रों में वायु प्रदूषण की सबसे बड़ी वजह परिवहन है, वहां परिवहन क्षेत्र में तेजी से बदलाव किया जाये, सार्वजनिक परिवहन में सुधार लाकर उसको प्रोत्साहित किया जाये, डीजल वाहनों से ई-वाहनों की तरफ बढ़ा जाये, तो स्थानीय स्तर पर वायु प्रदूषण को कम किया जा सकता है।

एक दशक पहले तक दुनिया के सबसे प्रदूषित शहरों की सूची में चीन के शहर अव्वल थे। फिर चीन ने वायु प्रदूषण से निबटने के लिए 2013 में पांच साल के लिए राष्ट्रीय और क्षेत्रीय स्तर पर व्यापक पहला स्वच्छ वायु कार्यक्रम को लागू किया था। इस कार्यक्रम के लागू होने के बाद 74 मुख्य शहरों के पीएम 2.5 स्तर में 33 प्रतिशत तक की कमी आयी। इस साल जुलाई में चीन ने अपना दूसरा स्वच्छ हवा कार्यक्रम भी घोषित कर दिया है।

वहीं भारत अभी तक पहले राष्ट्रीय स्वच्छ वायु कार्यक्रम को ही लागू करने का इंतजार कर रहा है। आम लोगों और मीडिया के काफी दबाव के बाद पर्यावरण मंत्रालय ने अप्रैल में अपने पहले राष्ट्रीय स्वच्छ वायु कार्यक्रम के ड्राफ्ट को लोगों की प्रतिक्रिया के लिए अपनी वेबसाइट पर लगाया था। पांच महीने बीत जाने के बावजूद अभी तक कार्यक्रम को लागू नहीं किया जा सका है।

दिसंबर, 2015 में पर्यावरण मंत्रालय ने थर्मल पॉवर प्लांट को दो सालों के भीतर उत्सर्जन मानकों को पूरा करने की अधिसूचना जारी की थी, जो अभी तक तो लागू नहीं हो पायी है, बल्कि खुद सरकार अब इसे पूरा करने के लिए और पांच साल की समय-सीमा बढ़ाने की तैयार कर रही है। जबकि वर्तमान में 300 से अधिक थर्मल पॉवर प्लांट यूनिट उत्सर्जन मानकों का पालन नहीं कर रहे हैं।

ऐसे में डब्ल्यूएचओ की वायु प्रदूषण और स्वास्थ्य पर आयोजित पहली वैश्विक सम्मेलन से काफी उम्मीदें बढ़ जाती हैं। उम्मीद है कि दुनिया भर की सरकारें मिलकर लोगों के स्वास्थ्य के लिए गंभीर खतरा बन चुके वायु प्रदूषण से निबटने के लिए ठोस निर्णय लेगी और अपने नागरिकों के स्वास्थ्य और भविष्य को सुरक्षित बनायेगी। ❑

अमीर देशों के भोग और विलास का बिल गरीब देश चुकाते हैं

❑ सोपान जोशी

ये दो हफ्ते का मौसम था जो हर साल की तरह नवंबर-दिसंबर में आया और चला गया। संयुक्त राष्ट्र की जलवायु परिवर्तन पर सालाना मंत्रणा का। हर अखबार-पर्चे, पत्रिका और खबरी टीवी में पृथ्वी के वायुमंडल में होते उथल-पुथल की जानकारी की बाढ़ आ जाती है।

बार-बार बताया जाता है कि अमुक साल तक अमुक डिग्री तापमान बढ़ने से प्रलय की स्थिति आ आयेगी। हर साल कई लोग पृथ्वी को बचाने की कसम खाते हैं। अखबारों और टीवी में पर्यावरणवादियों के विरोध प्रदर्शन के चित्र आते हैं। पर्यावरण के विशेषज्ञ बताते हैं कि स्थिति कितनी गंभीर है। हर साल कहा जाता है कि धरती को बचाने का समय बस यही है क्योंकि बाद में बहुत देर हो जायेगी।

ऐसा हम पिछले कई वर्षों से सुनते आ रहे हैं। दिसंबर के दूसरे हफ्ते तक ये बुखार उतर जाता है। और फिर नये साल के उल्लास और उत्सवों में जलवायु की चिन्ता डूब जाती है। अगले नवंबर तक। और क्यों नहीं डूबे? नाउम्मीदी सहने की एक हद होती है। हम सबको जीवन जीने के लिए आशा चाहिए होती है जो हम एक नये साल में ढूंढ लेते हैं।

हर साल जलवायु परिवर्तन को लेकर हताश होना ही क्यों पड़ता है? हमें ध्यान रखना चाहिए कि ये संयुक्त राष्ट्र संघ का स्वभाव है। इस तरह के मायूसी के मेले उसके कैलेंडर में अटे मिलते हैं। 1992 में

संयुक्त राष्ट्र ने दुनिया भर के शीर्ष नेताओं को ब्राजील के शहर रीओ में बुलाया, पर्यावरण पर बातचीत करने के लिए। इसे पृथ्वी शिखर वार्ता कहा गयां इसमें तीन बड़े पर्यावरण संकटों के समाधान के लिए तीन संधियों पर हस्ताक्षर हुए।

तीनों विषय ऐसे हैं जिनमें हिन्दी बोलने और लिखने वालों का सीधा संबंध है पर फिर भी इनके नाम इतने जटिल हैं कि समझ के परे हैं : जलवायु परिवर्तन, जैविक विविधता और मरुस्थलीकरण। अबूझ भाषा भी संयुक्त राष्ट्र के स्वभाव में है क्योंकि उसके नौकरशाह ऐसी जुबान बोलते हैं, जिससे किसी को बुरा न लगे। जैसा कि डर से किये गये कामों में होता है, किसी को बुरा लगे चाहे ना लगे, अच्छा तो किसी को नहीं ही लगता।

इसलिए तीनों संधियों के पेंच समझने के लिए इनके मूल में झांकना पड़ेगा। जैविक विविधता ज्यादातर उष्णकटिबंध के गरीब देशों में है। बढ़ते हुए मरुस्थल तो दुनिया के सबसे गरीब देशों की ही समस्या हैं। इन दोनों में यूरोप और अमेरिका के अमीर देशों की कोई रुचि नहीं होती। इसलिए जैव विविधता और बढ़ते मरुस्थलों पर मंत्रणा दो साल में एक बार होती है। कब होती है और कम खतम होती है, पता ही नहीं चलता। जैसे मरुस्थलों पर दसवीं मंत्रणा अभी महीने भर पहले दक्षिण कोरिया में हुई और हमारे यहां पता तक नहीं चला।

पर जलवायु परिवर्तन की बात कुछ और है। पृथ्वी का वायुमंडल इतना तेजी से क्यों बदल रहा है? क्योंकि यूरोप और अमेरिका के देश पिछले दो सौ साल में बहुत तेजी से अमीर हो गये हैं। कार्बन की गैसें तो हमारे जीवन के हर हिस्से से बनती हैं। यहां तक की हम सांस भी छोड़ते हैं तो कार्बन डाईआक्साइड ही निकलती है। पर औद्योगिक क्रांति के बाद यूरोप और फिर अमेरिका में प्रकृति से मिले संसाधन को धड़ल्ले से भुनाया गया।

खनिज, कोयला, पेट्रोल, पानी, जंगल के पेड़, मिट्टी की उर्वरता, इन सबका इतना तेज उपयोग मनुष्य ने कभी नहीं किया था। इससे बने उपभोग के साधनों से यूरोप और अमेरिका में एक तरह की अमीरी तो आयी है पर हमारे वायुमंडल में कार्बन की गैस बहुत बढ़ गयी है। इसका सीधा असर ये होता है धरती पर पड़ने वाली सूरज की गर्मी बराबर पलट नहीं पाती। नतीजतन धरती का तापमान बढ़ रहा है, जिससे हमारे जीवन में उथल-पुथल आ रही है।

वायुमंडल अमीर और गरीब देशों का फर्क नहीं करता, जरूरत और भोग-विलास का भी नहीं। हम लोगों के पास अभी भी सांस लेने का बिल नहीं आता। पर अमीर देशों के भोग-विलास से हुए जलवायु परिवर्तन का बिल गरीब देश चुका रहे हैं। जलवायु परिवर्तन के सबसे भीषण परिणाम उष्णकटिबंध के इलाके में ही दिख रहे हैं। विज्ञान हमें बता रहा है कि ये उथल-पुथल हम पर भारी पड़ेगी। जैसे समुद्र तल के उठने से घनी आबादी वाले बांग्लादेश के कई हिस्से डूब जायेंगे और लाखों लोग शरणार्थी बनकर भारत आ जायेंगे। हजारों साल से बने खेती के तरीके बेकार हो जायेंगे क्योंकि बारिश का समय और मात्रा बहुत बदलेंगे। सूखा और बाढ़ दोनों का असर ज्यादा होगा। कुछ अमीर देशों को जलवायु परिवर्तन से फायदा भी होगा। जैसे कनाडा और रूस में लाखों एकड़ बर्फ के नीचे दबी पड़ी भूमि खुल जायेगी।

फिर भी अमीर देश अपने भोग-विलास में कटौती करने को तैयार नहीं हैं। जो सरकार और शासन का तंत्र हमारे इस आधुनिक युग में सत्तासीन है वो केवल पैसे की आवाज सुनता है। इसलिए संयुक्त राष्ट्र की निगरानी में होने वाले पर्यावरण कार्यक्रमों का आज तक कोई असर नहीं रहा। समस्याएं गरीब देशों के पास होती हैं और धन अमीर देशों के पास है। इसका सीधा असर संयुक्त राष्ट्र के काम में दिखता है जो मूलतः जड़ है।

हर साल दिसंबर में होने वाली जलवायु मंत्रणा का ढर्रा तय है। पहले हफ्ते 190 देशों के कूटनीतिज्ञ और नौकरशाह बैठकर बहस करते हैं। माहौल में संयुक्त राष्ट्र की खास मनहूसियत और गंभीरता रहती है। भाषणबाजी का भाव न तो अपनी बात समझाना होता है और न ही किसी और की बात समझना। उलझी से उलझी, जटिल से जटिल भाषा में छोटी से छोटी बात पर बारीकी से झकबाजी होती है। हर बात का बहुत गहरा पटापेक्ष होता है जो थोड़े बहुत लोगों को ही पता होता है। इसके ऊपर कम से कम तीन यूरोपीय भाषाओं में काम होता है—अंग्रेजी, फ्रेंच और स्पैनिश। हर विषय पर संधिक्रम एक अथाह लंबे शतरंज के खेल जैसा होता है।

जब जलवायु संधि पर हस्ताक्षर हुए थे तब ये तय हुआ था कि कटौती अमीर देश करेंगे और गरीब और विकासशील देश, जैसे भारत, अपनी गरीबी दूर करने के बाद कटौती करनी शुरू करेंगे। पर आज तक किसी देश ने असरदार कटौती नहीं की है। हर मुल्क के कूटनीतिज्ञ गहन और उबाऊ जुबान में ये ही बताते हैं कि जलवायु परिवर्तन की जिम्मेदारी उनकी नहीं है। अमीर देश अपने भोग-विलास को अपनी बुनियादी जरूरत बताते हैं और गरीब देश अपनी फटेहाली का रोना रोते हैं। दोनों कहते हैं कि वो कार्बन गैस वायुमंडल में छोड़ना रोक नहीं सकते हैं। हरएक गहन वैज्ञानिक तथ्य दिखाता है। हर तर्क का कुतर्क होता है। हर बादशाह पर इक्का पड़ता है। और फिर इक्के पर दुक्की!

गरीब देशों से आये कूटनीतिज्ञ रोतले और अकेले दिखते हैं। जैसे अनमने ही भीख मांगने आ गये हों और ताकतवर प्रतिद्वंद्वियों के सामने निरीह बकरे जैसे डाल दिये गये हों। उनकी भाषा में क्रियाएं भी अकर्मक होती हैं। फिर गरीब देशों के पास भेजने के लिए ठीक प्रतिनिधि होते भी नहीं हैं और अगर हों तो उन्हें भेजने का पैसा और दिमाग दोनों नहीं होता। जहां अमीर देश बीसियों या कुछ सौ लोगों के दल भेजते हैं, जिमें कई विशेषज्ञ, कूटनीतिज्ञ और सौदेबाजी के विशेषज्ञ होते हैं, वहीं कुछ गरीब देश तो एक या दो लोगों के दल भेजते हैं, और

उनकी रुचि भी घूमने-फिरने में ज्यादा होती है, जलवायु परिवर्तन में कम। इसलिए उनमें से कोई अगर कुछ ठीक काम करना चाहे तो भी कर नहीं सकता।

दूसरे हफ्ते में देशों के राजनीतिक नेता मंत्रणा में पहुंचते हैं। कूटनीतिज्ञों की बातचीत पर आधारित मसौदे पर राजनीतिक सौदेबाजी होती है। हर साल उम्मीद ये होती है कि राजनेता साथ मिलकर चलने का रास्ता निकालेंगे। हर बैठक के बाहर पत्रकार और पर्यावरण कार्यकर्ता टकटकी लगाये इंतजार करते हैं नतीजे का। हर साल राजनीतिक नेता कुछ ऐसी घोषणा करते हैं जो कर्णप्रिय हो। हम सबका साझा भविष्य बचाने के लिए हर संभव प्रयास करने जैसे ऊंची बातें। पर बारीकी से पढ़ने पर पता चलता है कि कोई भी पुख्ता राजनीतिक या संवैधानिक प्रण नहीं लिया गया है। कूटनीतिज्ञ और विशेषज्ञ अगले साल की मंत्रणा और उसके लिए होने वाली साल भर की बैठकों की तैयारी में चले जाते हैं।

अगर आपकी संवेदनाएं मरी नहीं हों तो इस सालाना सर्कस समारोह को करीब से देखना आपको अवसन्न छोड़ देगा। क्योंकि विज्ञान हमें हर रोज बता रहा है कि हमारे भोग-विलास की गैस के नशे में हम वो सब बिगाड़ रहे हैं जो इस पृथ्वी पर हमारा जीवन बनाता है। पर्यावरण और पृथ्वी को बचाने की बचकानी बातचीत में हम भूल जाते हैं कि पृथ्वी हम सबसे कहीं बड़ी और पुरानी है। विज्ञान मनुष्य की उत्पत्ति कोई दो लाख साल पहले अफ्रीका में मानता है। पृथ्वी की उत्पत्ति 450 करोड़ साल पहले की आंकी जाती है। ठीक से पता करने की कूवत हमारे यहां है ही नहीं।

इसलिए जो कोई भी हमारे ग्रह को बचाने की बात करे उसे याद रखना चाहिए कि हम पृथ्वी का कुछ नहीं बिगाड़ सकते। जब कभी प्रलय आयेगी तब हम वैसे ही गायब हो जायेंगे जैसे कभी डाइनोसोर हुए थे। पृथ्वी किसी जीवन के नये रूप को जन्म देगी। अगर बचाना है तो हमें अपने आपको बचाना होगा अपने आप से।

क्योंकि विज्ञान हमें ये भी बताता है कि मनुष्य का क्रमविकास, जिसे अंग्रेजी में 'एवोल्यूशन' कहते हैं, एक समूह में रहने वाले प्राणी की तरह हुआ है। मनुष्य जाति की कामयाबी का कारण रहा है पारिवारिकता, सामाजिकता। इसी से हम साथ मिलकर बड़े से बड़े पशुओं को भी कब्जे में कर सकते हैं। बंद मुट्ठी लाख की।

लेकिन पिछले 600 साल में जो रास्ता यूरोप ने अपनाया है वह व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षा का है। उसमें भोग समूह में, भगवान को अर्पित करके नहीं होता। हर व्यक्ति की खुशी और दुख उसके अपने होते हैं और भोग-विलास भी अपना ही। हर व्यक्ति को अपने लिए बंगला, गाड़ी, टीवी, फ्रिज इत्यादि अलग से चाहिए। इसीलिए हम सब घोर व्यक्तिवादी होते जा रहे हैं। आज के शहरों में ऐसा संभव है कि हम बिना अपने पड़ोसी से पहचान बनाये मजे में रह सकते हैं। लेकिन जब जलवायु परिवर्तन से पानी की किल्लत होगी तब हमें बाल्टी उठाकर अपने पड़ोसी का दरवाजा खटखटाना पड़ेगा। वापस जाना पड़ेगा अपनी सामूहिकता और सामाजिकता की ओर।

पर वह यात्रा आसान नहीं होगी। उसे समझने के लिए हमें जीवाणुओं की दुनिया देखनी चाहिए। जैसे पृथ्वी हमारा घर है, वैसे ही करोड़ों, अरबों सूक्ष्म जीवाणु हमारे शरीर में रहते हैं। इसमें यह भी जान लेना चाहिए कि हमारे शरीर में कुल जितनी कोशिकाएं हैं, उनमें केवल 10 प्रतिशत हमारी अपनी हैं। बाकी करीब 99 करोड़ सूक्ष्म जीवाणु हैं। इसे और सरल या कठिन ढंग से लिखना-समझना हो तो करोड़ शब्द को भी अंक में बदल लें। ये सब हमारे शरीर में परजीवी की तरह रहते हैं। इनमें से कोई तो बहुत लाभदायक होते हैं और उनके बिना हमारा शरीर खाना तक नहीं पचा सकता।

ये जीवाणु जानते हैं कि उन्हें अगर जीवित रहना है और अपनी संतति को आगे बढ़ाना है तो उन्हें मनुष्य को हानि नहीं पहुंचानी चाहिए। पर कुछेक जीवाणु ये भूल जाते हैं और अपने यजमान को बीमार कर देते हैं। फिर कभी-कभी ये जीवाणु हमें मारते भी हैं। कुछ तो हमें इसलिए मार सकते हैं कि वो किसी और शरीर में पहुंच सकें। लेकिन ज्यादातर बुखार मृत्यु का कारण नहीं बनते। क्योंकि हमारा शरीर उन्हें संभालने की काबिलियत रखता है। दूसरे जीवाणु उन्हें मारने के लिए प्राकृतिक ऐंटीबायोटिक भी बनाते हैं। आजकल तो हम बाजार से खरीद के ऐंटीबायोटिक भी खा सकते हैं।

हमारा पृथ्वी के प्रति बर्ताव बीमारी फैलाने वाले जीवाणुओं की तरह होता जा रहा है। हम उसे बुखार और नजला दे रहे हैं, अपनी कार्बन की गैसों से, जावे जलवायु परिवर्तन के रूप में दिख रहा है। पर ये लड़ाई हम हार ही सकते हैं, जीत नहीं सकते। अगर हम अपने यजमान को मार डालें तो हमें जीवाणुओं की तरह कोई और दूसरा यजमान नहीं मिलेगा। हमें कोई ऐसा ग्रह नहीं पता जहां हमारा जीवन चल सके। और पृथ्वी ने अपने ऐंटीबायोटिक निकाल दिये तो हमारा बचना नामुमकिन है। अगर आज नहीं तो 20, 50 या 100 साल बाद!

और अगर हम जलवायु परिवर्तन को झेलकर बच पाये तो संयुक्त राष्ट्र की सौदेबाजी, बहस और संधियों की वजह से नहीं। हम तो बचेंगे साथ मिलकर कष्ट झेलने की क्षमता से। और जो जितना गरीब है, उसमें ये क्षमता ज्यादा है। चाहे गांव हो या शहर, गरीब बस्ती में लोग एक दूसरे के सुख-दुख में साथ देते हैं। चूंकि जिसके पास ज्यादा साधन नहीं हों, वो अपने आस-पास के लोगों को साधन मानता है। वैसे भी गरीब का घर इतना बड़ा नहीं होता कि वो पूरा दिन भीतर घुस के ही काट दे। जिसके पास भोग विलास के अनंत उपाय हों, उसके लिए दूसरे लोग अड़ंगा ही होते हैं क्योंकि वो उसके विलास का हिस्सा मार लेते हैं।

इसी भाग-विलास को हमारे सारे नेता विकास कहते हैं। वो बहुत पढ़े-लिखे आदमी कहे जाते हैं। पर अर्थशास्त्र में बाइबल नहीं पढ़ाई जाती। वरना उन्हें पता होता कि दीन लोगों को ही धरती का अधिकारी माना गया है। ❑

मी टू

बदलते समय का संकेत 'मीटू'

❑ मृणाल पांडे

वरिष्ठ कामकाजी महिलाओं का भारतीय दफ्तरों में बड़े-बड़े ओहदों पर काबिज यौन उत्पीड़कों को बेनकाब करने का निडर 'मीटू अभियान' अब जिस तरह मीडिया से लेकर राजनीति तक को लपेटे में ले रहा है, वह बदलते समय का संकेत है। एक क्षण आता है, जब बात बर्दाश्त से बाहर हो जाती है। दर्जनों वरिष्ठ सम्मानित महिला मीडियाकर्मी जिस तरह निजी साक्ष्य देकर आज अपने भोगे यथार्थ के खुले ब्यौरे बता रही हैं, उनसे किसी भी राज-समाज का माथा शर्म से झुकना ही चाहिए। निर्भया मामले के उजास में अब इसे सोशल मीडिया का फितूर या आत्मप्रचार का हथकंडा कहकर टाला या खिसियाये झूठमूठ के साथ 'भारत में ऐसा हो ही नहीं सकता', कहकर खारिज नहीं किया जा सकता।

आजादी के बाद अगर सबसे अधिक विकास कहीं दिखता है, तो हमारे शहरी मध्यवर्ग में। इसके सुफल महिलाओं की झोली में भी जाते रहे हैं। खुली सोच वाले परिवारों की महिलाओं को सत्तर के दशक तक घर की चहारदीवारी से बाहर आकर मनचाहे क्षेत्र में काम करने की आजादी भी पहली बार मिली। उस पीढ़ी के पास पूर्ववर्ती रोल मॉडल बहुत कम थे। मेरी तरह ही मध्यवर्ग की पढ़ी-लिखी लड़कियों की वह पहली जमात थी, जिसने तमाम कड़वे-मीठे अनुभवों के साथ उच्च शिक्षा संस्थानों में पढ़ाने से लेकर मीडिया तक हर क्षेत्र में काम किया, पैठ बनायी और अपनी मेहनत व हुनर से उच्चतम पदों पर पहुंची। यही प्रक्रिया बैंकिंग, सेवा क्षेत्र, डिजिटल तकनीकी तथा प्रशासकीय सेवाओं जैसे अन्य क्षेत्रों में भी हुई। इसका फायदा परवर्ती पीढ़ियों को मिला। इसीलिए कार्यक्षेत्र में नयी शहरी महिला कर्मियों की मांगों का दायरा अब पहले की तरह समान वेतन, महिला शौचालय या क्रेश सुविधा पाना नहीं है। अब वे महिलाओं की कामकाजी जिन्दगी के सबसे बड़े, पर अब तक अनकहे सच को शेरदिल बनकर सामने ले आयी हैं, जो उनके काम, तरक्की और तन-मन को दीमक की तरह कुतरता आया है। पुरुषों की छेड़छाड़, पुरुष सहकर्मियों द्वारा अपने शरीर या कपड़ों पर शर्मसार करने वाले चुटकुले सुनने को बाध्य होना या मीटिंग्स में उनकी दबंगई को अब तक महिलाओं ने तो बर्दाश्त किया, पर परिवार समर्थित और सोशल मीडिया की मार्फत पुरुष दबंगई और यौन दबावों पर महिलाओं के सशक्त पलटवार से वाकिफ आज की भारतीय 'मीटू' पीढ़ी चुप्पी नहीं साधती। वह नाम लो और शर्मिंदा करो (नेम एंड शेम) की पक्षपाती है।

शहर से गांव तक, घरों या कार्यक्षेत्रों में बच्चियों और युवतियों का यौन उत्पीड़न होता है, यह बात वह कई बार खुद मौका-ए-वारदात पर जाकर रिपोर्ट करती रही है। उसने वहां का महिला विरोधी वातावरण और नेताओं के 'लड़के हैं, माफ कर दो' जैसा दोमुंहापन भी काफी उजागर किया है। पुरुष लेखक या रिपोर्टरों से एक कदम आगे जाकर वे बता रही हैं कि जिसका उत्पीड़न किया जाता है। किस तरह एक नादान मीडिया प्रशिक्षु बनकर किसी बड़े अखबार में जाने के बाद वहां के वरिष्ठतम पुरुष पहले उनका भरोसा जीतते हैं, फिर अकेले में बुलाकर डराकर या शर्मसार कर उनका यौन उत्पीड़न करते हैं। ऐसी घटनाओं से किस तरह वे खुद अपने वजूद और शरीर से घृणा करने को बाध्य हो जाती हैं, यह बात पिछले दिनों दर्जनों महिलाओं ने खुलकर बतायी है।

इन बयानों से गुजरना गहराई से हमारी अंतरात्मा को झकझोरने वाला होना चाहिए। लेकिन, जहां आम नागरिक इन बेबाक उद्घाटनों से पहली बार यौन-भेदभाव के सबसे घिनौने सच से रूबरू हुए हैं, वहीं ताकतवर उत्पीड़क हमेशा की तरह शक का फायदा उठाने की फिराक में हैं, और युवतियों को कोर्ट में घसीटने की धमकियां देने पर उतारू हैं।

तीन बातों से समझदार न्यायप्रिय लोगों को काफी चुभन महसूस हो रही है। एक, अगर हम लगातार महिलाओं को अच्छी शिक्षा देकर उन्हें पुरुषों के कंधे से कंधा मिलाकर काम करने का सपना दिखते हैं, तो फिर इसकी भी पूरी जिम्मेदारी राज-समाज पर है कि कार्यक्षेत्र में युवतियों के शोषण की हर शिकायत को, अगर वे यौन उत्पीड़न से जुड़ी हों, निर्भया कांड के बाद वर्मा कमिटी के सुझावों पर संशोधित यौन उत्पीड़न निरोधी कानूनों के उजास में परखा जाये, ताकि उत्पीडित को तुरंत न्याय मिले। दूसरे, राजनीतिक स्पर्धा और चुनावी प्रचार को ढाल बनाकर अपने लिए शर्मिंदगी पैदा करने वाले किसी भी मामले को राजनीतिक शत्रुता के तहत रचा गया षड्यंत्र बताना बंद हो। तीसरे, सारा ठीकरा मीडिया के सिर पर फोड़ते हुए इसे टीआरपी बढ़ाने का हथकंडा या सोशल मीडिया में पैठे ट्रोल्स का काला कारनामा बताकर रफा-दफा न किया जाये। ये तीनों बातें आपस में जुड़ी हैं, और सिर्फ समझदारों की चिंता या सार्वजनिक प्रदर्शनों से स्थिति का कोई तसल्लीबख्श हल नहीं निकल सकता।

संसद में विपक्ष से जुझने वाली स्मृति ईरानी या निर्मला सीतारमण सरीखी ताकतवर मंत्रियों की तुलना में यहां महिला बाल कल्याण मंत्री मेनका गांधी इस सरकार की संवेदनशील महिला मंत्रियों में से एक साबित हुई हैं। उन्होंने क्षोभ जताते हुए कहा कि वे अपनी आपबीती खुलकर बयान करने वाली युवा लड़कियों के साहस की दाद देती हैं। उनकी तरफ से केन्द्र सरकार को सुझाव भेजा गया कि एक चार जजों वाली समिति इन मामलों की खुली सुनवाई करे और उनके मंत्रालय को सुझाव दे कि इन तकलीफों का स्थाई निराकरण कैसे हो। लेकिन, इस समिति में कौन-कौन हो, इसके पहले यह खोजना जरूरी है कि न्यायपालिका के साथ रिश्तों को लेकर इस सरकार की अपनी छवि कैसी रही है? कानून का अंकुश प्रभावी बना रहे, इसके लिए राष्ट्रीय जीवन के हर क्षेत्र में पवित्र आचरणों का पालन जरूरी है। इनमें से एक है कि जिस भी मंत्री पर घृणित आरोप लगे हों, राजनीतिक दुर्भावना की चिंदी सामने रखकर उसका बचाव न किया जाये।

उत्पीड़ित महिलाओं के सवालों के अभी कोई निश्चित उत्तर नहीं हैं। लेकिन, एक बात साफ है कि कार्यक्षेत्र में यौन उत्पीड़न पर संस्थागत और सरकारी दोनों ही तरीके से रोक लगानी जरूरी है। यहां मीडिया की तारीफ करनी होगी कि वह पुरुष आधिपत्य वाला और कनफटा भले दिखता हो, पर अधिकतर जिम्मेदार संस्थान प्रमुखों ने खुलकर महिलाओं का पक्ष लिया है और आरोपितों को तत्काल प्रभाव से भीतरी सुनवाई के बाद फैसला आने तक पदमुक्त कर दिया है। उनकी न्यायबोध वेतनभोगी सरकारी लोगों से तो कहीं अधिक प्रामाणिक है। इसके बाद भी सामान्यतः चबर-चबर बोलने वाले सत्तारूढ़ राजनेता मौकापरस्त चुप्पी बनाये रखे, तो उनको खुद को जनमत का बेहतर प्रवक्ता मानने का कोई हक नहीं रह जाता। ❑

बा-बापू : 150वीं जयंती पर विशेष

'बा' भारत वापसी

❑ गिरिराज किशोर

गांधीजी को लेकर एक बड़ा और चर्चित उपन्यास प्रस्तुत कर चुके श्री गिरिराज किशोर ने अब बा पर कलम उठायी है। बा पर कुछ भी लिखना बहुत कठिन था। नहीं के बराबर जानकारियां। 'पहला गिरमिटिया' की सामग्री जुटाने में उन्हें कोई दो हजार पुस्तकों से मदद मिली थी। और 'बा' उपन्यास लिखते समय मुश्किल से दो पुस्तकें सामने थीं। वे उन सब लोगों से मिले, जिन्हें कस्तूरबा के बारे में थोड़ी-सी भी जानकारी थी और उन जगहों पर गये, जहां बा ने थोड़ा या बहुत समय बिताया था। इस तरह बनी यह कथा, यह इतिहास बा के अलावा खुद बापू के दो और रूपों को भी सामने रखता है–पति और पिता का रूप। प्रस्तुत है 'बा' का एक अंश, जो बा-बापू : 150 के अवसर पर क्रमशः प्रकाशित हो रहे हैं। –सं.

मोहनदास को सब जिम्मेदारियों से मुक्त हो जाने के बाद ध्यान आया कि उन्होंने गोखले जी से वायदा किया था कि वे भारत आयेंगे। यह संयोग था कि गोखले लंदन आ रहे थे। वे मोहनदास से मिलकर भविष्य की योजना के बारे में चर्चा करना चाहते थे। मोहनदास ने कस्तूरबा के साथ लंदन जाने के लिए टिकट बुक कराया। हरमन कैलनबैक भी उनके साथ जा रहे थे। भारत जाने वाले बाकी फीनिक्सवासी सीधे भारत चले गये। तीनों बच्चे भी उनके साथ ही भारत चले गये थे। कस्तूरबा मन से यही चाहती थी, तीनों

बच्चे भी उनके साथ लंदन जायें। लेकिन मोहनदास का खयाल था कि उनका भारत जाना ही ठीक है।

उन्नीस दिन की यात्रा उन्होंने तीसरे दर्जे के छोटे केबिन में ही तय की। मोहनदास की यही मर्जी थी। पिछले दिनों घटनाएं तेजी से घटी थीं। उस उथल-पुथल में वे काफी थक गये थे। सफर में दोनों ने अपने आपको अपने केबिन तक सीमित रखा था। यहां तक कि खाना भी केबिन में खाते थे। शिपिंग कंपनी ने उनके लिए सूखे मेवों का प्रबंध कर दिया था। मोहनदास कागजों की छंटाई में लगे रहते थे या चिट्ठियां लिखते रहते थे। एक घंटा रोज वे अपने सहयात्री कैलनबैक को गुजराती सिखाते थे। कई बार कस्तूरबा गुजराती के जर्मन उच्चारण पर हंस देती थी। कैलनबैक भी हंसकर उस स्थिति का आनंद लेता था। कैलनबैक की योजना लंदन से मोहनदास के साथ भारत जाने की थी। उसके बाद मोहनदास और कस्तूरबा भगवद्गीता के श्लोक और रामायण का पद-गान करते थे।

कस्तूरबा के हर समय व्यस्त रहने वाले हाथ भले ही रुक जाते हों या विचार निरंतर चलते रहते थे। वह पहली बार एक अंजान देश जा रही थी। चूंकि उसके पति वहां रहकर पढ़े थे इसलिए वह उससे वह परोक्ष रूप से परिचित थी। चूंकि उसके पति वहां रहकर पढ़े थे इसलिए वह उससे वह परोक्ष रूप से परिचित थी। लंदन से उसका एक अप्रिय नाता भी था, हरि चाहकर भी लंदन पढ़ने नहीं जा सका था। यही बात बाप-बेटे के बीच गांठ की तरह कसती गयी थी। उसका मन हरि और गुलाब के पास चक्कर लगाता रहता था। गुड़िया सी लगने वाली रामी को हृदय से लगाने की बात सोचकर रोमांचित हो जाती थी। एक दूसरी बात सोचकर आंखें चमक उठती थीं कि भारत जाकर वह हरिलाल के दोनों बेटों कांति और रसिक को पहली बार देखेगी। कभी सोचती थी इस बीच बहुत से बुजुर्ग आत्मीय गोलोक सिधार गये होंगे। करमचंद गांधी और पुतलीबा की संतानों में से भी अब उसके पति मोहनदास बचे थे। 1913 में करसनदास चले गये थे। करसन के मरने की सूचना ने यादों का तूफान ला दिया था। करसन बड़ा भाई होने के साथ मित्रवत भी था। एक लंबा अरसा हो गया था जब करसन, तुलसी चाचा के बेटे मोती लाल और मोहनदास का विवाह एक ही मंडप तले संपन्न हुआ था। 1914 में केबिल से सूचना मिली कि मोटा भाई लक्ष्मीदास भी नहीं रहे। एक तूफान शांत हुआ था दूसरा तूफान सब कुछ उलट-पुलट किये दे रहा था। लक्ष्मीदास मोहनदास के लिए पिता समान थे। कस्तूरबा उनकी छत्रछाया में लगभग आधा जीवन रही थी। कस्तूरबा के लिए सबसे दुखद समाचार था कि उसके भाई खुशालदास कपाड़िया, उसकी पत्नी और बेटी, एक के बाद एक बुखार से मर गये थे। केवल छोटा भाई माधवदास बचा था। वह बाहर से शांत थी पर अंदर टूट-फूट हो रही थी। 18 जुलाई 1914 को जब केपटाउन से लंदन के लिए आर.एम. किलफॉन्स कैसिल से इंग्लैंड के लिए रवाना हुए तो जनरल स्मट्स ने कहा, 'एक संत हमारे सागरतट से विदा हो गये, संभवतः सदा के लिए।'

मोहनदास का लंदन जाना लोगों से अजाना नहीं रहा। पत्रकार भारत के नये नेता की प्रतीक्षा में थे। कई समाचार-पत्रों ने कस्तूरबा का उल्लेख भी किया था कि उसने भी उनके साथ भारतीय मजदूरों की समस्याओं का हल निकालने में मुसीबतें झेली थीं। सत्याग्रह में जेल गयी थी।

लंदन में मोहनदास और कस्तूरबा का सीसिल होटल में सम्मान समारोह का आयोजन किया गया। उसमें भारतीय मित्रों के

साथ अंग्रेज मित्र भी शामिल हुए थे। लेकिन गोखले, जिन्होंने मोहनदास को लंदन बुलाया था, अनुपस्थित थे। उनका स्वागत समारोह में न होना अखर रहा था। दरअसल गोखले डायबिटीज के मरीज थे, वे इलाज के लिए फ्रांस चले गये थे। वहां जाकर फंस गये थे। मोहनदास और कस्तूरबा के लिए लंदन में रुककर इंतजार करने के अलावा दूसरा कोई विकल्प नहीं था। लंदन जाकर मोहनदास को पता चला उनका साथी कैलनबैक जर्मन होने के कारण भारत नहीं जा पायेगा। युद्ध के कारण दोनों देशों के संबंध तनावपूर्ण थे। कैलनबैक के पास जर्मनी जाकर अपने मूल आर्किटेक्ट के व्यवसाय में लौट जाने के सिवाय कोई रास्ता नहीं बचा था।

मोहनदास ने कैन्सीगंज में कस्तूरबा की सहमति से एक सस्ता सा घर किराये पर ले लिया। विश्वयुद्ध के कारण मोहनदास उलझन में पड़ गये थे। युद्ध के कारण ब्रिटिश सरकार के प्रति उनकी भी जिम्मेदारी बनती थी। दक्षिण अफ्रीका में भी ऐसे ही संकट के समय उन्होंने एम्बुलेंस की राहत टुकड़ी बनायी थी। उन्होंने लंदन के भारतीय प्रवासियों के नाम एम. के. गांधी और मिसेज एम. के. गांधी के हस्ताक्षर से एक अपील जारी की। बहुत से भारतीय डॉक्टर्स, वकील और छात्रों के नाम आये। उन सब नामों को युद्ध संबंधी ब्रिटिश सरकार के सहायक सचिव को भेज दिया। मोहनदास अपना अधिक समय राहत टुकड़ी का उत्साह बढ़ाने और उनके प्रशिक्षण में लगाते थे। कस्तूरबा और मोहनदास ने हास्पिटल के नर्स-सहायता कोर्स में नाम लिखा लिया था। लेकिन शारीरिक कमजोरी और लंदन के नम मौसम के चलते मोहनदास को प्लूरिसी ने जकड़ लिया। मोहनदास अपने कमरे में सीमित हो गये। कस्तूरबा के सामने कई चुनौतियां आ गयीं। विदेशी भाषा, बीमारी और एम्बुलेंस की टुकड़ी। सबसे बड़ी चिन्ता मोहनदास के स्वाथ्य की थी। एम्बुलेंस-टुकड़ी के सदस्य के रूप में काम करने के उत्साह पर पानी पड़ गया था। उधर जो सदस्य प्रशिक्षण के लिए सेना के अस्पताल में भेजे गये थे वे एम. के. गांधी के अलावा किसी और से निर्देश लेने के लिए तैयार नहीं थे। कस्तूर इस समस्या का जिक्र मोहनदास से नहीं करना चाहती थी। वह स्वयं इतनी अंग्रेजी नहीं जानती थी कि स्वयं जाकर उन्हें समझा सके। यह तनातनी तब समाप्त हुई जब फ्रांस का पहला घायल इलाज के लिए लाया गया।

मोहनदास की तबीयत संभलने में नहीं आ रही थी। कस्तूरबा डॉक्टर के निर्देशों का शब्दशः पालन कर रही थी। मोहनदास के खाने में भी डॉक्टर द्वारा बताये गये परिवर्तन कर दिये थे। उसने एक शाकाहार विशेषज्ञ से भी सलाह ली। उसने बताया कि बार-बार मालिश करें, कच्ची बिना पकी सब्जी खायें, गुनगुने पानी से नहायें, सब खिड़कियां खुली रखें। कस्तूरबा ने उसकी सलाह का पूरी तरह अनुपालन किया। लेकिन इन सब प्रयागों से कोई फायदा नहीं हुआ। कस्तूरबा को भी ठंड लग जाने से कसकर जुकाम हो गया। एक भारतीय मूल के डॉक्टर को बुलाकर दिखाया। उसने स्पष्ट कहा कि अगर मरीज लंदन में रहा तो आने वाली सर्दी और ज्यादा कठिन होगी। उनकी प्लूरिसी ठीक नहीं हो पायेगी। अंत में यही तय हुआ कि अब घर जाने का समय आ गया।

9 जनवरी, 1915 को जब जहाज ने अपोलो बंदरगाह पर लंगर डाला तो मोहनदास और कस्तूरबा को, तपती धूप में इतनी भीड़ को खड़ा देखकर आश्चर्य हुआ। जब जहाज से उतरकर नीचे आये तो और भी आश्चर्य हुआ। वे सब उनकी ही आवभगत में आये थे। उनका विचार था अगर मिलेंगे भी तो चंद जान-पहचान वाले लोग मिलेंगे, इतनी भीड़ जमा हो जायेगी इस बात की उन्होंने आशा नहीं की थी। उसकी सेवा और त्याग की कहानियां भारत में पहले से प्रचलित थीं। एक वक्त वह भी था जब एक अंग्रेज नौकरशाह ने उन्हें कमरे से निकलवा दिया था। लेकिन बंबई के गवर्नर लार्ड विलिंग्डन ने गांधी और कस्तूरबा को बहुत सम्मान के साथ आमंत्रित किया था। कस्तूर सादी साड़ी और कांच की चूड़ियां पहनकर गई थी जो वर्षों पूर्व विवाह में चढ़ाई गयी थी। मोहनदास काठियावाड़ी पोशाक यानी पगड़ी, धोती और देसी चोगा पहने थे। कस्तूरबा को मन ही मन यह सोचकर सुकून मिला था कि मोहनदास विलायती और पारसी पोशाक पहनने और दूसरों को पहनाने की झक से स्वयं भी मुक्त हो गये थे और दूसरों को भी कर दिया था। गवर्नर ने कस्तूरबा का परिचय दक्षिण अफ्रीका की नायिका कहकर कराया था। मोहनदास का परिचय भारत की स्वतंत्रता के नायक के रूप में दिया था। मोहनदास ने यह कहकर प्रतिवाद किया था कि 'वे और उनकी पत्नी बंबई की पश्चिमी सभ्यता में रसे-बसे कुलीन लोगों के बनिस्बत नेटाल के अनुबंधित मजदूरों के बीच अधिक सहज अनुभव करते हैं। वे पूरी तरह ग्रामीण हैं।'

बंबई से सबसे पहले वे पोरबंदर और राजकोट मोटा भाई लक्ष्मीदास और करसन के शोक संतप्त परिवार से मिलने गये थे। कस्तूरबा उन सबको देखकर आहत सी देखती रह गयी थी। एक जमाने में जिन्दादिल और उत्साही जिठानियां बिन पतियों के छाया मात्र नजर आ रही थीं। वे दोनों वैधव्य का जीवन जीने के लिए अभिशप्त थीं। कस्तूरबा दुःख से इतनी कातर हो गयी थी कि बोल नहीं फूट रहा था। दोनों जेठों के चित्र भी दीवान करमचंद और पुतलीबा के चित्रों के बराबर, फूल की माला पहनाकर, टांग दिये गये थे। दोनों घरों की दुनिया बदल गयी थी। जहाज से उतरने के बाद जिस जन समुदाय को देखकर समझा था कि वे सब गांधी की अहिंसा, गरीबी का चयन, सेवा और आत्मोत्सर्ग की भावना से प्रभावित होकर आये थे, वह आसपास कहीं नजर नहीं आ रहे थे। चारों तर एक तरह की मासूमियत और बेचारगी फैली थी। कस्तूरबा के सामने वे सब दृश्य घूम रहे थे जब वह परिवार में बहुओं में सबसे छोटी थी। सासू से लेकर जिठानियां तक छोटी होने के कारण उसके प्रति अपने-अपने विशेषाधिकार का प्रयोग करती थीं। लेकिन आज वे दोनों जिठानियां उसके मुंह की तरफ देख रही थीं, जैसे वह बड़ी हो। उसके मन को एक सवाल बार-बार परेशान कर रहा था, क्या स्त्री का अपना कोई व्यक्तित्व नहीं होता? पति के बिना क्या वह कुछ नहीं? दोनों जिठानियों में न उत्साह बचा था, न आत्मविश्वास।

...क्रमशः अगले अंक में

उपवास के जरिये 'गांधी-150' शुभारंभ

'गांधी-150' वर्ष का प्रारंभ मुंबई के गांधीजनों ने मिलकर किया। स्वतंत्रता सेनानी डॉ. जी. जी. परीख की अगुवाई में गांधी जयंती से लेकर जे. पी. जयंती तक हर रोज सुबह 8 बजे से लेकर शाम 5.17 तक उपवास किया गया। 2 अक्टूबर से 11 अक्टूबर तक यानी दस दिनों में कुल 74 कार्यकर्ताओं ने उपवास किया। डॉ. जी. जी. परीख पांच दिन उपवास पर बैठे।

गांधी विचार व मूल्यों के प्रति निष्ठा व्यक्त करने के लिए उपवास किया गया था तथा उपवास के जरिये लोगों को आवाहन किया गया कि वे हिंसा व नफरत से दूर रहें। समाज में भाईचारा बनाये रखें। इस विचार को विस्तार से पर्चे में लिखे गये तथा लोगों को बांटे गये।

मुंबई सर्वोदय मंडल के अहाते में उपवास चला। सर्वोदय मंडल, वास्तु बाजार में आने-जाने वालों का ध्यान आकर्षित होता रहा। कुछ लोग उपवास स्थान को भेंट भी देते रहे। मुंबई के कार्यकर्ताओं का आना-जाना चलता रहा। 'गांधी-150' को लेकर क्या किया जाये इस विषय पर अनौपचारिक बातचीत चलती रही। एक दिन इलाके के बच्चों ने आकर गांधीजी पर वक्तव्य रखा। इसका आयोजन अपर्णा दलवी ने किया था।

उपवास की शुरुआत सुबह 8 बजे प्रार्थना से होती थी और शाम 5.15 बजे प्रार्थना से ही उपवास समाप्त किया जाता था क्योंकि पांच बजकर पंद्रह मिनट पर गांधी की हत्या की गयी थी।

उपवास का आखिरी दिन यानी 11 अक्टूबर जेपी जयंती का दिन था। गांधीजी की फोटो के साथ जेपी का फोटो भी रखी गयी थी। इस दिन उपवास स्थान पर सभा आयोजित की गयी। वरिष्ठ पत्रकार व कार्यकर्ता रमेश ओझा मुख्य अतिथि थे। वे नोआखली (बांग्लादेश) की यात्रा कर लौटे थे। उन्होंने यात्रा के अनुभव साझा किये।

उपवास कार्यक्रम में मुंबई सर्वोदय मंडल, युसूफ मेहेरअली सेंटर, राष्ट्र सेवा दल, जनता दल (सेक्यूलर) ने विशेष भूमिका अदा की।

कविता, गीत, प्रश्नोत्तरी, 'मेरी समझ का गांधी' पर निवेदन

मुंबई के गांधीजनों द्वारा 2 अक्टूबर को 'गांधी जयंती' अपने-अपने तरीके से मनायी गयी। भाषणों की छटां और उसके केन्द्र में विद्यार्थियों की जागरूकता देखते ही बनती थी।

अनुयोग विद्यालय के छात्र-छात्राओं के भजन से कार्यक्रम का शुभारंभ हुआ। शाहीर दत्ता म्हात्रे ने गांधीजी पर 'पोवाडा' गाया। पत्रकार अमेय तिरोडकर व ज्येष्ठ पत्रकार संजीव साबडे ने 'गांधी कहां कैसे मिला' विषय पर भाष्य किया। अमेय तिरोडकर ने कहा कि गांधी उन्हें स्थानीय प्रवास में, पत्रकारिता करते समय, जगह-जगह मिलता रहता है। गांधी को टालकर हम आगे बढ़ ही नहीं सकते। संजीव साबडे ने कहा कि गांधी से परिचय उनके माता-पिता ने करवा दिया था। छोटे वाक्य, सीधी भाषा में कैसे लिखना चाहिए यह गांधी से हमने सीखी है। आज गांधी से उनकी अहिंसा की भाषा, निर्भयता की भाषा समाज को सीखने की जरूरत है। लेकिन, इसपर अमल करने में हम सब चूक जाते हैं।

इसके बाद उपस्थित विद्यार्थियों द्वारा प्रश्न पूछा गया, जिसके उत्तर डॉ. विवेक कोरडे, विजय तांबे ने दिया।

विभिन्न चैनल, अखबारों में कार्यरत पत्रकार सुरेख ठमके, पंकज दलवी, सुनील तांबे, यामिनी दलवी, भीमराव गवली, प्रशांत डिंगणकर ने 'न्यूजलेस कविता' प्रस्तुत की।

इस कार्यक्रम का आयोजन मुंबई सर्वोदय मंडल, गांधी सेवा मंदिर, राष्ट्र सेवा दल, युसूफ मेहरअली सेंटर ने संयुक्त रूप से किया था। शरद कदम, जयंत दिवाण, मधु मोहिते ने कार्यक्रम का संचालन किया। मंच पर राजश्री चोचो ने पेटी-चरखा चलाया जो शब्दों से ज्यादा बोला। गांधीजी के लिए वही सही श्रद्धांजलि व स्मरण रहा।

'गांधी-150' वर्ष में स्कूलों के बच्चों के साथ 150 'गांधी-संवाद' (कार्यशाला) करने का संकल्प मुंबई सर्वोदय मंडल ने किया है। 'गांधी संवाद' की जिम्मेदारी 'खुशी' नामक संस्था ने ली है, जिसकी प्रमुख मंसूर पटेल व उज्ज्वला पटेल हैं।

मुंबई के पूर्व उपनगर कुर्ला से लेकर कल्याण तक के इलाके की स्कूलों में 'गांधी संवाद' कार्यक्रम लिया जा रहा है। यह इलाका आर्थिक रूप से कमजोर लोगों है। स्कूल में आने वाले बच्चे भी इन्हीं परिवारों के हैं। मराठी, हिन्दी, उर्दू माध्यम के निजी व महानगरपालिका के स्कूलों में 'गांधी-संवाद' शुरू है। 20 अक्टूबर तक कुल 31 स्कूलों में 49 'गांधी-संवाद' हुए। कुल 3391 छात्र-छात्राओं से संवाद किया गया।

गांधीजी के जीवन के मूल्य भाईचारा, प्रेम, इंसानियत, इनसे बच्चों को अवगत किया जाता है। स्कूल के हर क्लास में प्रोजेक्टर रहता था, जिसके जरिये 'विडियो-क्लिप्स' का प्रदर्शन किया जाता था। क्लिप्स के सहारे विवेचन किया जाता था। एक घंटे का यह संवाद रहता था। संवाद के आखिर में एक क्रांति गीत बच्चों से गवाते हैं। कार्यक्रम के समय गांधीजी के जीवन की प्रदर्शनी लगाते हैं।

मंसूर पटेल, गणेश शिर्के, फेहमिदा, यास्मिन, रोहिणी आदि की कार्यक्रम में हिस्सेदारी रही और फेहमिदा कोर्डिनेटर थी।

मुंबई के उपनगर में महात्मा गांधी सेवा मंदिर के सभागार में कार्यक्रम संपन्न हुआ। **—जयंत दिवाण/टीआरके सोमैया**

सिद्धेश्वर काश्यप की पांच गज़लें

(एक)
रहगुजर में आग है अभी
तख्त पर एक नाग है अभी

है सिकंदर रहनुमा मगर
मुल्क पर वो दाग है अभी

है लुगाई सल्तनत नई
मौज करता काग है अभी

ख्वाब बंटते नये-नये
यूं न रोटी साग है अभी

ताज की है जंग छिड़ चुकी
हरकदम षड्राग है अभी

है गजल की अंजुमन सजी
और मनता फाग है अभी

(दो)
हर कदम पर बाज देखिए
और जंगल राज देखिए

है मसीहा रहगुजर मगर
बस गिराता गाज देखिए

भूख में जनता यहां वहां
ख्वाब यूं स्वराज देखिए

नाच गाना जश्न आजकल
मौज में है ताज देखिए

जाति का फंडा धरम नया
कैद है आवाज देखिए

सल्तनत सजदा अभी नयी
पर उसी पे नाज देखिए

रोशनी है बेचता वही
है मगर सरताज देखिए

(तीन)
ख्वाब सी जिन्दगी देखिए
हो गई अजनबी देखिए

खाप के खौफ में बेजुबां
सिर्फ है दिललगी देखिए

आज मजहब सलामत मगर
सल्तनत विषपगी देखिए

है अमन का नया राग यूं
हर कदम अगलगी देखिए

ताज पहने मसीहा यहां
बांटता तीरगी देखिए

सौंपती अब मुहब्बत मगर
कर सहद बंदगी देखिए

(चार)
दीप मिल जलाते हैं
हम खुशी मनाते हैं

ख्वाब के जहां में यूं
आग को लगाते हैं

भूख जुल्म दहशत है
हर कदम बढ़ाते हैं

किन्तु हम वतन को अब
फूल से सजाते हैं

ईद को दिवाली को
साथ हम मनाते हैं

और जां निसारी की
हर गजल बनाते हैं।

(पांच)
ख्वाब का बाजार देते हैं
कर उसे अंगार देते हैं

आदमी जलता उसी में यूं
ताज कर गुलनार देते हैं

है धरम उनकाव मसीहाई
जीस्त कर अखबार देते हैं

जाति मजहब कर नया फंडा
जुल्म की सरकार देते हैं

है मुहब्बत अब इबादत सी
हम उसे एतबार देते हैं

हर गजल इंक्लाब है लेकिन
प्यार का उजियार देते हैं

इस जमीं पर जां कुर्बां कर
हम नया संसार देते हैं

हाथ में लेते तिरंगा ही
छोड़ हम घर-बार देते हैं

('नई धारा' से साभार) ❑

सर्व सेवा संघ (स्वत्वाधिकारी) के लिए महामंत्री, शेख हुसैन द्वारा सर्व सेवा संघ परिसर, राजघाट, वाराणसी (उ.प्र.) 221001 से प्रकाशित तथा महावीर प्रेस, भेलूपुर, वाराणसी से मुद्रित। संपादक : अशोक मोती।